150735

  

स्तानी, अंग्रेज़, जर्मन, रशियन, आर्य, अनार्य, हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध तथा ऐसी ही सहस्रों छोटी-छोटी सीमाओं में जकड़ रखा है—संकीर्ण बना रखा है। वह संवेदनशील अथवा सहानुभूतियुक्त नहीं है। किन्तु कविता एक ऐसा दिव्य प्रसाद है, जिसके द्वारा मनुष्य विश्वरूप में आत्मरूप का दर्शन कर पाता है, संवेदन और सहानुभूति की महत्ता को समझ पाता है। इसी संवेदन की साक्षात् अनुभूति से कविता का प्रत्यक्ष होता है।

'मा निषाद प्रतिष्ठां, त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।'

आदिकवि की इस आदि-कविता में चराचर मात्र के प्रति यही संवेदनात्मक ध्वनि गूंज उठी है और इसी से कविता का प्रादुर्भाव हुआ है।

## हिन्दी कविता

विश्व की अन्यान्य भाषाओं के साहित्य के समान हिन्दी के साहित्य का प्रारम्भ भी कविता के रूप में ही हुआ। अपभ्रंश के रूप में तो हिन्दी की कविता सातवीं शताब्दी से लिखी जाने लगी थी। किन्तु देश-भाषा के रूप में इनका प्रारम्भ ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में जाकर हुआ। उस समय देश पर यवन आक्रमणकारियों का तांता-सा लगा हुआ था। उन आक्रमणकारियों से लोहा लेने के लिए यहां के राजा प्रजा सर्वदा सन्नद्ध रहते थे। जनता की चित्तवृत्तियों के अनुसार तात्कालिक साहित्य इन संघर्षात्मक रूप में ही अभिव्यक्त हुआ। चन्दबरदाई इस काल के प्रमुख एवं प्रतिनिधि-कवि हैं। उनके पृथ्वीराजरासो नामक महाकाव्य में वीरोल्लास अनुपम उत्साह के साथ व्यक्त हुआ है। कुछ समय तक इसी शौर्य, वीर्य और स्वदेश-रक्षा के लिए मर-मिटने की भावनाओं का बोलबाला रहा, किन्तु कुछ समय पश्चात् परिस्थितियाँ परिवर्तित हुईं, निरन्तर चार सौ वर्षों तक मुसलमानों के साथ संघर्ष में जूझने पर भी जब यहां की जनता उन आक्रमणकारियों की बाढ़ को रोकने में समर्थ न हो सकी तो उसने भगवद्भक्ति का सहारा ले लिया। यह भगवद्भक्ति की धारा

भी चार रूपों में बह निकली । जयदेव, विद्यापति, सूरदास आदि ने राधाकृष्ण के प्रेमगीत गाकर कई सदियों से सूखी पड़ी हुई जनता के हृदय की क्यारियों को फिर से लहलहाता हुआ बना दिया, उसमें सरसता और सजीवता की प्रतिष्ठा कर दी। ज्ञानमार्गी कबीर और प्रेममार्गी जायसी आदि कवियों ने आत्मा और परमात्मा के मिलने के अनुपम रहस्यवाद के संकेत दिये और साथ ही हिन्दू और मुसलमानों के अजनबीपन को मिटा कर उनमें पारस्परिक सद्भाव एवं सौहार्द स्थापित करने का स्तुत्य प्रयत्न किया । हिन्दी-साहित्याकाश के सूर्य रामोपासक महाकवि तुलसीदास ने निराशा, अकर्मण्यता और नास्तिकता में डूबी हुई जनता को उत्साह, कर्मयोग एवं वैदिक धर्म की ओर अभिमुख करने का महान् कार्य किया। इस प्रकार इस भक्ति की धारा ने हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक ऐसे पवित्र प्रेम के सुरस से आप्लावित कर दिया कि जन-समाज फिर से सुख और शांति की सांस लेने लगा । अब जहांगीर और शाहजहां जैसे शांतिप्रिय एवं विलासी सम्राटों के शासनकाल में विलासिता की प्रवृत्तियां विशेष रूप से विकासोन्मुख हो उठीं । देव, बिहारी, आलम, घनानन्द, पद्माकर आदि अनेक कवियों ने शृंगार रस की अनुपम उक्तियों से साहित्य भंडार की श्रीवृद्धि की ।

औरंगज़ेब आदि अत्याचारी शासकों की क्रूरता के कारण राष्ट्रीयता मूलक वास्तविक वीरता व धर्म-रक्षा की भावनाएं फिर से अपने प्रबल रूप में प्रकट होने लगीं। महाकवि भूषण, सूदन, लाल तथा जोधराज आदि वीर कवियों ने अपने काव्यों के द्वारा वीर भावनाओं को मूर्त अभिव्यक्ति प्रदान की । इस प्रकार प्राचीन साहित्य को निम्न चार भागों में विभक्त कर सकते हैं—१. लड़ाई-भिड़ाई अथवा वीरता की प्रवृत्तियों से पूरित वीर गाथात्मक साहित्य । २. रामकृष्ण या निर्गुण ब्रह्मोपासनापरक भक्ति संबंधी साहित्य । ३. रीतिबद्ध शृंगारिक साहित्य । ४. राष्ट्रीय भावनाओं से भरा हुआ वीरगाथा के द्वितीय उत्थान-काल का वीर-साहित्य ।

## प्रस्तुत संग्रह

प्रस्तुत संग्रह में इन चारों प्रवृत्तियों का पूर्ण प्रतिनिधित्व प्रदान करने वाली रचनाएं संगृहीत की गई हैं। चन्दबरदाई वीरगाथा-काल के प्रतिनिधि-कवि हैं। उनके पृथ्वीराजरासो के दो परमोपयोगी स्थल उद्धृत किये गये हैं। विद्यापति हिन्दी में प्रथम राधाकृष्ण के गायक हैं। उनके अत्यन्त सरस पद यहां दिय गये हैं। सूरदास, नन्ददास, मीराबाई, रसखान आदि अन्य कृष्णभक्तों की भी परम मनोहर रचनाएँ संकलित की गई हैं। ज्ञानमार्गी कबीर के रहस्यवाद-संबंधी पद और सद्विचारवर्धक साखियों का समावेश किया गया है। प्रेममार्गी जायसी के पद्मावत के उत्कृष्टतम अंश नागमती-वियोग-खंड आदि अनेक प्रसंगों का समावेश किया गया है। गोस्वामी तुलसीदास, केशव, सेनापति इन तीन प्रमुख रामभक्त कवियों की प्रमुख रचनाएँ उद्धृत की गई हैं जिनका साहित्य में सर्वोच्च स्थान है।

देव, बिहारी, घनानन्द, आलम, पद्माकर रीतिकाल के चार प्रमुख कवियों की भी सुरुचि-संपन्न कविताएँ समाविष्ट हुई हैं। भूषण और ...धराज इन दो वीरगाथा के द्वितीय उत्थानकालीन प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं से इस संकलन को सुशोभित किया गया है। इस प्रकार पुरातन ...ग की सभी विचार-धाराओं को इस संग्रह में पूर्ण प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ है। साथ ही हिन्दी के अन्तर्गत आने वाली सभी भाषाओं की रचनाएँ ...ता इसमें समाविष्ट हैं। भाषाओं के क्रमिक विकास का स्वरूप भी इन रचनाओं से स्पष्ट होता है। इस प्रकार इस संकलन को संपूर्णरूपेण सर्वांगसुन्दर बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। प्रत्येक कवि के परिचय तथा उद्धृत कविता के सार और समीक्षा दे देने से रचना के आशय को समझने में बहुत सुविधा होगी। १८ प्रतिनिधि कवियों की प्रमुख रचनाओं को इस संग्रह में संकलित करते हुए भी इस बात का ध्यान रखा गया है कि संग्रह इतना भारी-भरकम न हो जाय कि छात्र नियत समय में समाप्त ...न कर सकें।

**—संपादक**

# कवि-सूची

# चन्दबरदाई

## जीवन-परिचय

जन्म सं. १२०५ अनुमानित　　　　　　　　　　मृत्यु सं. १२५० अनुमानित

महाकवि चन्द का जन्म अनुमानित सं० १२०५ में लाहौर में हुआ था। इस तरह इन्हें पंजाब का एक श्रेष्ठ महाकवि कहा जा सकता है। कहते हैं कि चन्द और महाराज पृथ्वीराज का जन्म एक ही तिथि को हुआ था। वे दोनों आजीवन घनिष्ठ मित्र रहे और दोनों का देहान्त भी घटनावश एक ही साथ हुआ।

यह भी प्रसिद्ध है कि पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में चन्द उनके साथ नहीं थे। वह उस समय देवी के मन्दिर में बैठ कर काव्य-रचना कर रहे थे। युद्ध में पृथ्वीराज हार गये और शहाबुद्दीन ने उन्हें कैद कर लिया। पृथ्वीराज को गज़नी ले जाया गया। चन्द को जब यह समाचार मिला तब उन्होंने अपना रासो अपने पुत्र जल्ह को सुपुर्द कर दिया और गज़नी को रवाना हो गये।

चन्द के छप्पय विशेष प्रसिद्ध हैं। 'छप्पय' लिखने में इतनी सफलता अन्य किसी कवि को नहीं मिली। उसमें संयुक्ताक्षरों की अधिकता है और शैली प्राचीन होने के कारण वह दुरूह भी है। चन्द की कविता में उर्दू और फ़ारसी के भी काफ़ी शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

## पृथ्वीराजरासो

### सार और समीक्षा

प्रस्तुत पंक्तियाँ महाकवि चन्दबरदाई कृत हिन्दी के आदिमहाकाव्य पृथ्वीराजरासो के प्रथम समय से उद्धृत की गई हैं। इसमें कवि ने पृथ्वीराज

रासो का परिचय देते हुए बताया है कि मूल पृथ्वीराजरासो का पाठ (आर्या-छन्द के हिसाब से ) सात हज़ार है। साथ ही इस महाकाव्य की कुछ विशेषताएँ बताई गई हैं, इसके पश्चात् आबू के यज्ञकुंड से प्रतिहार, चालुक्य, पाँवार, और चौहान नामक चार क्षत्रिय-कुलों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए बताया गया है कि महर्षि वसिष्ठ ने आबू पर्वत पर एक यज्ञ रचा था, उसमें दानवगण आकर विघ्न डाला करते थे। यज्ञकुंड की अग्नि से उत्पन्न हुए इन चारों वीरों ने यज्ञ की रक्षा की। यज्ञाग्नि से प्रकट होने वाले उसी चौहान के वंश में महाराज पृथ्वीराज उत्पन्न हुए। साथ ही पृथ्वीराज के पिता महाराज सोमेश्वर के पराक्रम एवं तोमार वंशी दिल्ली के नरेश अनंगपाल की पुत्री से सोमेश्वर का विवाह और पृथ्वीराज की उत्पत्ति की कथा भी इसी प्रसंग में कही गई है। इससे पृथ्वीराजरासो की भाषा, शैली आदि का ज्ञान तो हो ही जाता है साथ ही चौहान वंश व पृथ्वीराज का इतिहास रासो में किस प्रकार दिया गया है इसका भी ज्ञान हो जाता है।

'घग्घर नदी के युद्ध' में पृथ्वीराज महाराज और शहाबुद्दीन के युद्ध की एक झलक है। पृथ्वीराज की वीरता एवं उदारता आदि गुणों का इस प्रसंग में सुन्दर विवेचन किया गया है। प्राचीन अपभ्रंश भाषा का स्वरूप भी इन प्रसंगों से स्पष्ट प्रकट होता है। 'घग्घर नदी के युद्ध' का वर्णन पढ़ते-पढ़ते तो वीररस का प्रत्यक्ष चित्र ही अंकित हो जाता है।

पृथ्वीराजरासो वीरगाथाकाल में रचित हिन्दी का आदिमहाकाव्य है। जिस समय इसकी रचना हुई है, उस समय साहित्य अपभ्रंश भाषा में ही निर्मित होता था, फलतः पृथ्वीराजरासो की भाषा भी अपभ्रंशनिष्ठ है। इसमें संस्कृत के शब्दों को बिगाड़ कर लिखने की प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है। जैसे कि समर्पण को 'समप्पन' ऋषि को 'रिष्षि' विशेष को 'विसिष्ष' वर्ण को 'वन्न' आदि। पृथ्वीराजरासो में प्रबंध-काव्य की शैली तथा गाथा, कवित्त, साटक, दूहा आदि का सफल प्रयोग दर्शनीय है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन युग की अपभ्रंश भाषा में लिखित वीर-काव्यों में पृथ्वीराजरासो का स्थान अत्यन्त महत्त्व-

पूर्ण है। प्रस्तुत प्रसंगों को पढ़कर वीरगाथाकालीन साहित्य की समग्र विशेषताओं का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है। तात्कालिक समाज व साहित्य की प्रवृत्तियों से परिचित होने के लिए पृथ्वीराजरासो का अध्ययन परमावश्यक है।

## चन्द का काव्य कैसा था

दूहा—काव्य समुद्र कवि चन्द कृत, मुकत समप्पन ग्यान।
राजनीति वोहिथ सुफल, पार उतारन यान॥
छंद प्रबंध कवित्त जति, साटक गाह दुअत्थ।
लहु गुरु मंडित खंड इहि, पिंगल अमर भरत्थ॥
सत्त सहस नषसिष सरस, सकल आदि शुभ दिष्ष।
घटि बढ़ि मत्तह कोइ पढ़ै, मुहिं दूसन न विसिष्ष॥

## कोई अशुद्ध पढ़ने वाला चन्द को काव्य-सम्बन्धी दोष न दे

कवित्त—अति ढंक्यो न उघार सलिल जिमि जानि सिवालह।
वरन वरन सुवृत्त हार चतुरंग विसालह।
विमल अमल बानी विलास वयन वर ब्रन्नन।
वक्तिणि बानि विनोद मोद श्रोतनि मन हुन्नन।
जुत अजुत अग्गि विचार बहु वयन छंद छुट्यो न कहि।
घटि बढ़ि कोइ सत्तह पढै चन्द दोस दिज्जो न यहँ॥

## आबू के अग्निकुंड से चार क्षत्रिय-कुलों की उत्पत्ति

कवित्त—तब सुरिष्षि वासिष्ठ कुंड रोचन रचि तामह।
धरिय ध्यान जजि होम मध्य वेदी सुर सामह।
तब प्रगटचौ प्रतिहार पौरि तल ठौर सुधारिय।
फुनि प्रगटचौ चालुक्क ब्रह्मचारी व्रत पारिय॥
पावार प्रगटचौ वीर वर कहचौ रिष्षि परमार धन।
त्रय पुरष जुद्ध कीन्हौ अतुल बकु रष्षस षुट्टैसुतन॥

अरिल्ल–अघट घाट रिष्षि इष्षि निसाचर परिसि पार धरि ध्यान ग्यान वर।
चिंतिय ब्रह्मकृत्य किहि कामह भयौ रूप रिषि ब्रह्म सु तासह ॥

दूहा—भुज प्रचंड चव च्यार मुष रत्त व्रन्न तन तुगं ।
अनलकुंड उपज्यौ अनल चाहुवान चतुरंग ॥

कवित्त–अनलकुंड आभंग उपजि चहुवान अनल थल ।
करह संठि करवार सुधन संग्रह्यौ बाहबल ॥
तिहि रष्षिसि परवार धारमुख धरनि निर्घट्टिय ।
षलु जु षित्ति संमुहे तिणहि सिर सस्त्रनि तुट्टिय ॥
बंभानिजग्य निरविघन किय पुहुपव्रिष्टि सुर सीस रजि ।
रष्षी सुधरणि सह षग्ग धरि रिष्ट निवारिय इष्ट भजि ॥

दूहा—जिहि रष्षा कीनी सुदुज तिहि ति वंस प्रिथिराज ।
सो सिरषत पुव्वह दहन की रासो जु विराज ॥

## सोमेश्वर का सिंहासन पर विराज कर राज्य करना

सोमेस सूर गुज्जर नरेस मालवी राज जिहि षग्ग षेस ॥
मारू बजाइ भट्टीव थान थल भूमि लई बर चाहुवान ।
ढिल्लीस व्याहि तोंवर घरेस तिहिं गर्भ भयो पित्थलनरेस ॥
आनन्दराज नन्दन सुसोम मोरिया दल्ल तिहि कियो होम ।
नाग पुर नगर सुं लग्गि धोम आनन्द केलि अजमेर भोम ॥

## अनंगपाल का सोमेश्वर को कन्यादान करना

कवित्त–अनगपाल तुंवर नरिंद धम्म मंड्यो उच्छव वर ।
सुभ सोमेस नरिंद ग्रहन पानीग मंडि कर ।
दासी वीनर पंच दिन्न सै सत्त हत्थि हय ।
सहस ग्राम सुभ थान दिन्न हिसार कोट तय ।
उंट वहिल रथ वाजि पर मोती माल सुरंग घन ।
चल्यौ नरिंद अजमेर दिसि प्रीति सहित मिलि सज्जननि ॥

## सोमेश्वर की तुँअर वंशीय रानी का गर्भ धारण करना

दूहा—सोमेसर तुंवर घरणि अनंगपाल पुत्रीय ।
तिहि गर्भहि प्रिथिराज धरि दानव कुल छत्रीय ।।

## विक्रम के सदृश पृथ्वीराज हुए

दूहा—विक्रम राज सरीस हुव बुद्धि वर्नन कवि चन्द ।
भूत भविष्यत व्रत्तमन कह्यौ अनूपम छन्द ।।

दूहा—तिहि सहाय सूरह सुभट सत सामंत रू सूर ।
तिहि सुकित्त प्रगटित करण कह्यौ चन्द कवि मूर ।।

कवित्त—चहुआन्नह बर वंस वीर मानिक्क पुत्र दस,
तासु कित्ति कवि चन्द जम्म लग्गै जंपत जस ।
जो बीत्यौ भारत्थ आदि अंतह सो जंप्यौं,
वय बारनी सु प्रमान लग्ग मग्गह गुन थप्यौं ।
ज्यौं भयौ जनम कवि चन्द कौ भयौ जनम सामंत सव,
इक थान जनमि दिन मरण* इक चलै कित्ति ससि लग्गि रवि ।।

## घग्घर नदी का युद्ध

कवित्त—दिल्लियपति प्रथिराज, अवनि आषेटक षिल्लिय ।
साठ सहस असवार, जाइ लग्गा धर ढिल्लिय ।।
धूनि धरा पतिसाह, रहे पेसोर सुथानय ।
सथ्थ लिये सामंत, दिली कैंमास सुजानय ।।
म्रगया सु रमय प्रथिराज बर, गज्जन वैंधर धूसियै ।
दूसरी इंद्र दिल्लेस बर, सुभर सरस ढिग सुम्भियै ।।

---

*पृथ्वीराज, गौरी और चन्द पूर्व जन्म के तपोबल से एक ही समाधि-स्थान से आये थे और एक ही दिन तीनों पैदा हुए और एक ही साथ एक ही स्थान गज़नी में तीनों मरे । माणिक्क देव चहुआन वंश में हुए ।

दूहा—गई षबर घम्मान की, उट्ठ चढ़े असवार ।
दिल्ली धर लीजै तषत, दिसि गज्जनै पुकार ॥
प्रथीराज साजत पवंग, हं ग नर भर भार ।
दिल्लीपति आखेट चढ़ि, कुहुकबान हथनारि ॥
डेरा करि पेसोर नृप, सहस सट्ठि सुभ बाज ।
सोन पंथ बिच पंथ दोइ, गल ग्रज्जैं अग्राज ॥

कवित्त—गौरी पठए दूत, चले च्यारों चतुरन्नर ।
लीय षबरि प्रथिराज, चले पच्छे गज्जन धर ॥
किय सलाम जब दूत, तबहि तत्तार सुबुझ्झिय ।
कहा करंत दिलेस, चढ़त गिरवर धर धुज्जिय ॥
सँग सतषद्द सामंत चलि, तीन पाव लष्षह तुरी ।
अनि सूरबीर नर बर सकल, चुड़ी षेह धर उप्परी ॥
आषेटक दिन रमय, संग स्वानं घन चीते ।
नावक पावक विपुल, जक्कि दिन जामह जीते ॥
सहस तुरी बग्घह सु, संत मेघा कलि कंठिय ।
सीहगोस पुच्छिय सु, लंब सिरषां सिर पुट्ठिय ॥
जुरी रु बाज कुही गुहा, धानुक्की दारू धरा ।
बहु काल भाव बदकं बिला, जम भय तब जित्तिय धरा ॥
रमै राज आषेट, सत्त एकल बल भंजै ।
पंच पथ्थ परिगाह, रंग अप्पन मन रंजै ॥
सहस एक बाजित्र, सूर किरनह संपेषै ।
सुनि गौरी साहाब, दाह दिल महन विसेषैं ॥
जितौब जब्ब प्रथिराज को, तब तसबी कर मंडिहौं ।
टामंक सद्द नद्दह करौं, जुगति साह तब छाँडहौं ॥

दूहा—देस देस कग्गद फटे, पेसंगी षुरसान ।
रोम हबस अरु बलक में, फट्टे पट्ठ अप्पान ॥

कवित्त—सिलह लोह सज्जंत, लष्ष पंचह मिलि पष्षर।
कूंच कूंच षरि षैर, गुरज धारी लष गष्षर॥
कोस दहं दह कूच, आइ गिरवान सपत्तौ।
दौरि दूत दिल्लेस, जाम कर त्रय दिन वित्तौ॥
मुक्काम कियो प्रथिराज नृप, तहां षबरि करिदूत सब।
गौरी नरिंद है गै सुमर, सजि आयौ उप्पर सु अप॥

चैत मास रबि तीज, सेत पष्षह कल चंदह।
भयो सुदिन सध्यांन, चढचौ प्रथिराज नरिंदह॥
कटक सबर हिल्लोर, भार सेसह करि भग्गिय।
चढ़ि सामंड सकज्ज, नद्द सुर अंमर जग्गिय॥
गज रोर सोर बंधे घटा, सिलह बीज सिलकावलिय।
पप्पीह चोंह सहनाइ सुर, नदि घग्घर मेलान दिय॥

दूहा—आयौ आतुर उप्परह, पैसंगी पतिसाह।
पच्छांई बादल प्रबल, भग्गे राह विराह॥

बरन बरह तहं देषिये, घंटा रव गजराज।
सन्नाहा सन्नाह रजि, पष्षर सष्षर साज॥

भई हलोहल सेन सब, पान व्यूह बर खेत।
लष्ष एक भर अंग मैं, छत्र धरचौ सिर सेत॥

हुअ टामंक सुदिसि बिदिसि, हुअ संनाह सनाह।
हूअ हलोहल सुम्भरन, दोऊ दिन एक राह॥

त्रोटक—हुअ सद्द सुसद्दह नद्द भर, घन घेरिक कीयसु फौज बरं।
लष लष्षं मिले दल संमिलयं, नर भद्दव बाहल संमिलियं॥

सु अगें हथनारि अपार सजं, तिन देषत काइर दूर भंज।
तिन पिट्ठ हजारउ मत्त चलें छह रित्त झरंत करी तिहले॥

तिन पिट्ठह फौज गहब्बरयं, धरि गोरिय मुट्ठ करं धरियं ।
कमनेत अभूल सुलष्ष लियं, तिन मध्य ततारह छत्र दियं ।।

लष दोय गुरज्ज स गष्षरिहं, षुरसान दियं दल पष्षरियं ।
बलकी उमराव सु सत्त सयं, निसुरत्तह लष्षह कम्म भयं ।।

षुरसान तनं दल उप्पटयं, मनु साइर सत्त उलट्ठ भयं ।
जलबानिय पानिय अद्ध सरं, लोहानिय पानिय खेतवरं ।।

हबसी उजबक्क हमीर भरं, कलबानिय क्रम्मिय अग्ग धरं ।
सरबानि ऐराकि मुगल्ल कती, बहु जाति अनेक अनेक भती ।।

कवित्त—फौज वधि सुरतान, मुष्ष अग्गे तत्तारिय ।
मधि नायक सुरतान, नील षुरसान सुभारिय ।।
मोती निसुरति षान, लाल हबसी कोलंजर ।
पाचि पीठि रुस्तंम, पना बहु भांति अवर नर ।।
उत्तरिय नद्द गोरीस पहुं, वज्जा दस दिसि बज्जिया ।
मानोकि भद्द उलटी मही, साइर अम्बु गरज्जिया ।।

दूहा—दिल्लीपति फौजह रची, दियौ जैत सिर छत्र ।
चामंडराय अग्गै भयौ, मनो सु गिरवर गत्त ।।

कवित्त—फौज रची सामंत, गरुड़-व्यूहं रचि गढ्ढिय ।
पंष भाग प्रथिराज, चंच चावंड सुगढ्ढिय ।।
गाबरि अत्ताताइ, पाइ गोइंद सुठढ्ढिय ।
पुच्छ कन्ह चौहान, पेट पम्मारह पढ्ढिय ।।
सुंडाल काल अग्गो धरे, कढे दोइ कलहन्न किय ।
चालंत बान गौरे प्रबल, मानहु अंधकि मार दिय ।।

तत्तारह उप्परह, चित्त चावंड चलायौ ।
दुहूँ फौज अगंज, दुहूँ भुज भार भलायौ ।।



मीर बान वरषत, धार धारा हर लग्गौ ।
वाही चामँडराय, भूमि तत्तारह भग्गौ ।।
उत्तरे मीर से पंच दुइ, दाहिम्मै किन्नौ दहन ।
पहिले जु झुज्झ दिन पहिलनकै, मच्यौ जुद्ध जानै महन ।।

भूमि परचौ तत्तार, मारि कमनेत प्रहारै ।
एक घाव दोइ टूक, परे धारन मुहुधारै ।।
षुर बज्जै षुरतार, चमकि चामंड चलायौ ।
भरै बथ्थ सिर हथ्थ, एक बहु लष्षन धायौ ।।
जब परै बूंद तब बीर हुअ, सत्त घरी साहस धरै ।
तिनमा कटक्क त्रिबिधी घड़ा, एक एक पग अनुसरै ।।

भुजंगी—मचे कूह कूहं बहै सार सारं, चमक्कैं चमक्कैं करारं सुधारं ।
भभक्कैं भभक्कैं वहै रत्त धारं, सनक्कैं सनक्कैं बहैं बान भारं ।।

हबक्कैं हबक्कैं बहैं सेल भेलं, हलक्कैं हलक्कैं मची ठेल ठेलं ।
कुकैं कूक फूटी सुरत्तान ठानं, बकी जोग-माया सुरं अप्प थानं ।।

बहै चट्ट पट्टं उघट्टं उलट्टं, कुलट्टा धरै अप्प अप्पं उहट्टं ।
दडक्कं बजै सथ्थ मथ्थं सुटट्टं, कडक्कं बजै सेन सेना सुघट्टं ।।

बहै हथ्थ परमार सिरदार सारं, परे सेन गोरी बहै रत्तधारं ।
परचौ षान निसुरात्ति सेना सहित्तं, हुऔ सूर मध्यान दिल्ले सज्जित्तं ।।

तिन पिट्ठह फौज गहब्बरयं, धरि गोरिय मुट्ठ करं धरियं ।
कमनेत अभूल सुलष्ष लियं, तिन मध्य ततारह छत्र दियं ॥

लष दोय गुरज्ज स गष्षरिहं, षुरसान दियं दल पष्षरियं ।
बलकी उमराव सु सत्त सयं, निसुरत्तह लष्षह कम्म भयं ॥

षुरसान तनं दल उप्पटयं, मनु साइर सत्त उलट्ठ भयं ।
जलबानिय पानिय अद्ध सरं, लोहानिय पानिय खेतवरं ॥

हबसी उजबक्क हमीर भरं, कलबानिय क्रम्मिय अग्ग धरं ।
सरबानि ऐराकि मुगल्ल कती, बहु जाति अनेक अनेक भती ॥

कवित्त—फौज वधि सुरतान, मुष्ष अग्गे तत्तारिय ।
मधि नायक सुरतान, नील षुरसान सुभारिय ॥
मोती निसुरति षान, लाल हबसी कोलंजर ।
पाचि पीठि रुस्तंम, पना बहु भांति अवर नर ॥
उत्तरिय नद्द गोरीस पहुं, वज्जा दस दिसि बज्जिया ।
मानोकि भद्द उलटी मही, साइर अम्बु गरज्जिया ॥

दूहा—दिल्लीपति फौजह रची, दियौ जैत सिर छत्र ।
चामंडराय अग्गै भयौ, मनो सु गिरवर गत्त ॥

कवित्त—फौज रची सामंत, गरुड़-व्यूहं रचि गढ्ढिय ।
पंष भाग प्रथिराज, चंच चावंड सुगढ्ढिय ॥
गावरि अत्ताताइ, पाइ गोइंद सुठढ्ढिय ।
पुच्छ कन्ह चौहान, पेट पम्मारह पढ्ढिय ॥
सुंडाल काल अग्गो धरे, कढे दोइ कलहन्न किय ।
चालंत बान गौरे प्रबल, मानहु अंधकि मार दिय ॥

तत्तारह उप्परह, चित्त चावंड चलायौ ।
दुहूँ फौज अगंज, दुहूँ भुज भार भलायौ ॥



मीर वान वरषत, धार धारा हर लग्गौ ।
वाही चामँडराय, भूमि तत्तारह भग्गौ ॥
उत्तरे मीर से पंच दुइ, दाहिम्मै किन्नौ दहन ।
पहिले जु झुज्झ दिन पहिल्लकै, मच्यौ जुद्ध जानै महन ॥

भूमि परच्यौ तत्तार, मारि कमनेत प्रहारै ।
एक घाव दोइ टूक, परे धारन सुहुधारै ॥
षुर बज्जै षुरतार, चमकि चामंड चलायौ ।
भरै बथ्थ सिर हथ्थ, एक बहु लष्षन धायौ ॥
जब परै बूंद तब बीर हुअ, सत्त घरी साहस धरै ।
तिनमा कटक्क त्रिबिधी घड़ा, एक एक पग अनुसरै ॥

भुजंगी—मचे कूह कूहं बहै सार सारं, चमक्कैं चमक्कैं करारं सुधारं ।
भभक्कैं भभक्कैं वहै रत्त धारं, सनक्कैं सनक्कैं बहैं बान भारं ॥

हबक्कैं हबक्कैं बहैं सेल भेलं, हलक्कैं हलक्कैं मची ठेल ठेलं ।
कुकैं कूक फूटी सुरत्तान ठानं, बकी जोग माया सुरं अप्प थानं ॥

बहै चट्ट पट्टं उघट्टं उलट्टं, कुलट्टा धरै अप्प अप्पं उहट्टं ।
दडक्कं बजै सथ्थ मथ्थं सुटट्टं, कडक्कं बजै सेन सेना सुघट्टं ॥

बहै हथ्थ परमार सिरदार सारं, परे सेन गोरी बहै रत्तधारं ।
परचौ षान निसुरात्ति सेना सहित्तं, हुऔ सूर मध्यान दिल्ले सज्जित्तं ॥

# विद्यापति

## जीवन-परिचय

**जन्म सं० १४२५**      **मृत्यु सं० १५३२**

विद्यापति का जन्म सं. १४२५ के लगभग बिहार के दरभंगा जिले के बिसपी नामक ग्राम में हुआ था। वे तिरहुत के महाराज शिवसिंह के आश्रय में रहते थे। विद्यापति की कीर्तिलता और कीर्तिपताका में उनके आश्रय-दाता शिवसिंह की वीरता का बड़ा ही प्रभावपूर्ण वर्णन है। जयदेव के 'गीतगोविन्द' के अनुकरण पर लिखे जाने के कारण इसके गीत भी अतिललित कोमल-कान्त पदावली से परिपूर्ण हैं। नख-शिख का वर्णन और कवियों ने भी किया है पर विद्यापति ने सबका सार निचोड़ कर एक जगह रख दिया है। सौंदर्य के इस समुद्र में स्वयं नख-शिख भी डूबे जा रहे हैं। सुधा के इस सरोवर में राधा रूपी कमल को खिलाकर विद्यापति ने सचमुच काव्य-कला की अपूर्व छटा दिखाई है। इसीलिए उन्हें 'अभिनव जयद्देव' और 'मैथिल-कोकिल' आदि उपाधियों से विभूषित किया गया है।

भक्ति, सामयिक समाज व श्रृंगार-संबंधी विद्यापति के ११ ग्रंथ प्राप्त हो चुके हैं। वे शैव थे पर श्रृंगारिक गीत गाने के लिए उन्होंने राधा-कृष्ण को नायक-नायिका के रूप में स्वीकार कर लिया। विद्यापति अपनी अलौकिक कविता की कीर्त्ति-कौमुदी फैला कर सं० १५३२ के लगभग स्वर्ग सिधारे।

## पदावली

### सार और समीक्षा

प्रस्तुत पद विद्यापति की पदावली से लिये गये हैं। प्रथम पद्य में सखियां श्रीकृष्ण के वंशीवादक स्वरूप का वर्णन करती हुई कहती हैं कि

नन्दनन्दन श्रीकृष्ण कदम्ब वृक्ष के नीचे खड़े मंद मधुर ध्वनि से वंशी बजा रहे हैं और वंशी की ध्वनि में राधिका को बुला रहे हैं। इस प्रकार राधिका के लिए श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा का परिचय देकर गोपी अपनी सखी (राधिका) को वंशी की ध्वनि सुनने के लिए श्रीकृष्ण के पास चलने को प्रेरित कर रही है। दूसरे पद में राधिका के नख-शिख का वर्णन करते हुए उनके कुंचित केश-कलापों में निकली हुई मांग को काले बादलों में चमकती हुई बिजली कहकर कवि ने अपूर्व चमत्कृत प्रतिभा का परिचय दिया है। मुख व नेत्रों का वर्णन करते हुए स्वर्ण-कमल पर खंजनयुगल बैठाये गये हैं। इस प्रकार प्रकृति के साथ मानवीय सौंदर्य की समता इस पद में दर्शनीय है। तीसरे और चौथे पद में विरहिणी की वियोगाग्नि की असह्यता का वर्णन हुआ है। पांचवें तथा छठे पदों में भगवती दुर्गा एवं भगवान् शंकर की स्तुति की गई है। सातवां पद कीर्तिलता नामक पुस्तक से उद्धृत किया गया है। इसमें शिवसिंह की वीरता का ओजस्वी वर्णन है। इस प्रकार इन कविताओं में विद्यापति के काव्य की समग्र विशेषताएँ व्यक्त हो जाती हैं।

विद्यापति वीरगाथाकाल के शृंगारिक भक्त कवि थे, अतः इनकी रचनाओं में वीरगाथाकाल तथा भक्तिकाल दोनों कालों के साहित्य की विशेषताएँ विद्यमान हैं। उन्होंने वीरगाथा की परम्परा का पालन करते हुए 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' का निर्माण किया। इन दोनों पुस्तकों में वीरोल्लास विशेष रूप से व्यक्त हुआ है। इस समय भी वीर-काव्यों के लिए उसी प्राचीन अपभ्रंश भाषा का प्रयोग होता था, यह कीर्तिलता के आगे दिये गये उद्धरण से स्पष्ट सिद्ध है।

वीर-काव्य के अतिरिक्त शृंगारिक एवं भक्ति-काव्य में देशभाषा का व्यवहार भी इसी समय होने लगा था। विद्यापति की पदावली में इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ है।

'नन्दक नन्दन कदम्बेर तरुतरे धिरे-धिरे मुरलि बजाव' आदि पदों में पदावली का माधुर्य दर्शनीय है। राधा-कृष्ण के मिलन और विरह के गीत देशभाषा में सर्वप्रथम विद्यापति ने ही गाये हैं। सूरदास आदि परवर्ती

कृष्ण-भक्तों की भाव-सामग्री का मूलस्रोत विद्यापति के पद ही हैं। इस दृष्टि से विद्यापति की पदावली का अध्ययन परमोपयोगी है। विद्यापति वास्तव में संक्रमण-काल के कवि थे, अतः उनकी रचनाओं में संक्रमण-काल की सब विशेष प्रवृत्तियाँ अंकित हुई हैं। उनकी काव्य-प्रतिभा ने वीर-गाथाकाल की सांध्य छटा एवं भक्तिकाल की प्रभात सुषमा की श्री को एक साथ प्रकाशित किया इसमें कुछ संदेह नहीं।

## पद

नन्दक नन्दन कदम्बेर तरु तरे धिरे धिरे मुरलि बजाव।
समय संकेत निकेतन बइसल बेरि बेरि बोलि पठाव।
सामरी तोरा लागि अनुखने विकल मुरारि।
जमुना क तिर उपवन उदवेगल फिरि फिर ततहि निहारि॥
गोरस बिके अबइते जाइते जनि जनि पुछ बनमारि।
तो हे मतिमान सुमति मधुसूदन वचन सुनह किछु मोरा॥
भनइ 'विद्यापति' सुनु वर जौवति बन्दह नन्द-किशोरा॥

आएल रितुपति राज बसन्त। धाओल अलिकुल माधवि-पंथ॥
दिनकर-किरन भेल पौगंड। केसर कुसुम धएल हेमदंड॥
नृप-आसन नव पीठल पात। कांचन कुसुम छत्र धरु माथ॥
मौलि रसाल-मुकुल भेल ताय। सुमुख हि कोकिल पंचम गाय॥
सिखिकुल नाचत अलिकुल यंत्र। द्विजकुल आन पढ़ आसिख मंत्र॥
चंद्रातप उड़े कुसुम पराग। मलय पवन सह भेल अनुराग॥
कुंदबल्ली तरु धएल निसान। पाटल तून असोक-दलबान॥
किंसुक लवंग-लता एक संग। हेरि सिसिर रितु आगे दल भंग॥
सैन साजल मधु-मखिका कूल। सिसिरक बहु कएल निरमूल॥
उधारल सरसिज पाओल प्रान। निज नव दल किय आसन दान॥
नव वृन्दावन राज विहार। विद्यापति कह समयक सार॥
नव वृन्दावन नव नव तरुगन। नव नव विकसित फूल॥

नवल बसन्त नवल मलयानिल । मातल नव अलि कूल ॥
बिहरइ नवल किसोर ।
कालिंदी-पुलिन-कुंज बन सोभन । नव नव प्रेम-विभोर ॥
नवल रसाल मुकुल-मधु मातल । नव कोकिल कुल गाय ॥
नवजुवती गन चित उमता आई । नव रस कानन धाय ॥
नव जुवराज नवल वर नागरि । मीलए नव नव भांति ॥
निति निति ऐसन नव नव खेलन । विद्यापति मति माति ॥

कुसुम बान बिलास कानन केस सुन्दर रेह ।
निविल नीरद रुचिर दरसए अरुन जनि निअ देह ।
आज देखु गजराज गति वर जुवति त्रिभुवन सार ।
जनि कामदेवक विजयवल्ली विहलि विहि संसार ।
सरस ससधर सरिस सुन्दर वदन लोचन लोल ।
विमल कंचन कमल चढ़ि जनि खेलु खंजन जोल ।
अधर पल्लव नव मनोहर दसन दालिम जोति ।
जनि विमल विद्रुमदल सुधारस सीचि धरु गजमोति ।

चानन भेल बिखम सर रे भूखन भेल भारी ।
सपनहुँ हरि नहिं अएल रे गोकुल गिरधारी ।
एकसर ठाढ़ि कदम तर रे पथ हेरति मुरारी ।
हरि बिनु देह दगध भेल रे झामरु भेल सारी ।
जाहु जाहु तोहें ऊधब हे तोहें मधुपुर जाहे ।
चन्द्रबदनि नहिं जीउति रे बध लागत काहे ।
भनहिं विद्यापति तन मन दे सुनु गुन मति नारी ।
आजु आओत हरि गोकुल रे पथ चलु झट झारी ।

फुटल कुसुम नव कुंज कुटिर बन कोकिल पंचम गाबे रे ।
मलयानिल हिम सिखर सिधारल पिया निज देस न आबे रे ।
चनन चान तन अधिक उतापए उपबन अलि उतरोले रे ।

समय बसन्त कन्त रहु दुर देस जानल बिधि प्रतिकूले रे।
अनमिख नयन नाह मुख निरखैत तिरपित न भेल नयाने रे।
ई सुख समय सहए एत संकट अबला कठिन पराने रे।
दिन दिन खिन तनु हिम कमलिनि जनि न जानि कि जिब परजंत रे।
विद्यापति कह धिक् धिक् जीवन माधव निकरुन कन्त रे।

जय जय भैरवि असुर भयावनि पशुपतिभाविनि माया।
सहज सुमति वर दियउ गोसाउनि अनुगति गति तुअ पाया।
वासर रैंनि शवासन सोभित चरन चन्द्रमनि चूड़ा।
कतउक दैत्य मारि मुंह मेलल कतउ उगिल कैल कूड़ा।
सामर वरन नयन अनुरंजित जलद योग फुल कोका।
कट कट विकट ओठ फुट पाँड़रि लिधुर फेन उठ फोका।
घन घन घनय घुघुरू कत बाजय हन हन कर तुअ काता।
विद्यापति कबि तुअ पद सेवक पुत्र विसरु जनु माता।

हरि जनि विसरव मोर ममिता।
हम नर अधम परम पतिता।
तु समे अधम उधारन दोसर, हम सन जगत नहीं पतिता।
जम काँ द्वार जबाब कओन देव, जखन बुझत निज गुन कर बतिया।
जब जम किंकर कोपि उठाएत तखन के होत धरहेरिया।
भन विद्यापति सुकवि पुनित मति संकर विपरित बानी।
असरन सरन चरन सिर नावत दया करु दिअ सुलपानी।

## शिवसिंह का युद्ध

दूर दग्गम दमसि भंजेओ, गाढ़ गाढ़ गूढ़ीअ गंजेओ।
पातिसाह ससीम सीमा, समर दरसेओ रे।
ढोल तरल निसान सद्दहि, भेरि काहल संख नद्दहि।
तीनि भुअन निकेत, केतकि सान भरिओ रे।
कोह नीर पयान चलियो, वायु मध्ये राय गरुओ।

तरनि तेअ तुलाधरा, परताप गहिओ रे।
मेरु कनक सुमेरु कम्पिय, धरनि पूरिय गगन झम्पिय,
हाति तुरअ पदाति पअभर कमन सहिओ रे।
तरल तर तरवारि रंगे, विज्जुदाम छटा तरंगे
घोर घन संघात बारिस काल दरसेओ रे।
तुरअ कोटिअ चाप चूरिअ, चार दिस चौ विदिस पूरिअ
विसम सार असार धारा धरनि भरिओ रे।
अन्ध कूअ कबन्ध लाइअ फेरबी फफ्फरिअ गाइअ।
सहिर मत्त परेत भूत बेताल बिछलिओ रे।
पारमइ परिपन्थि गंजिअ, भूमि मंडल मुण्ड मण्डिअ
चारु चन्द कलेव कीत्ति सुकेतकि तुलिओ रे।
रामरूप स्वधम्म रक्खिअ, दान दप्प दधीचि बक्खिअ
सुकवि नव जयदेव भनिओ रे।
देवसिंह नरेंद्र नन्दन, शत्रु नरवइ कुल निकन्दन
सिंह सम सिव सिंह राया सकल गुनक निधान गनिओ रे।

# कबीर

## जीवन-परिचय

जन्म सं० १४५६ काशी में, मृत्यु सं० १५७५ मगहर में,

कबीर ज्ञानमार्गी शाखा के सर्वप्रथम एवं प्रतिनिधि-महाकवि हैं। इनके जन्म के संबंध में बहुत मतभेद है। कुछ विद्वान् इन्हें विधवा ब्राह्मणी की संतान मानते हैं तो दूसरे नीरू और नीमा नामक जुलाहा-दंपति की औरस संतान कहते हैं। कुछ भी हो, यह तो सर्वसम्मत है कि इनका पालन-पोषण मुस्लिम परिवार में ही हुआ। अतः इन्हें मुसलमान भक्त-कवि कहने में किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इनके गुरु श्री स्वामी रामानन्द थे। बचपन से ही यह हिन्दू धर्म से अत्यन्त प्रभावित थे। कभी-कभी तिलक भी लगा लिया करते और राम नाम तो इनका सर्वस्व ही था। किन्तु दूसरी ओर से ये हिन्दू और मुसलमानों के भेद-भाव, वैर-विरोध को दूर करने के लिए भी प्रयत्नशील थे। इन्होंने देखा कि व्रत, पूजा, रोजा, नमाज आदि बाह्य विधि-विधानों के कारण हिन्दू और मुसलमान आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं। एक पूर्व में मुँह करके संध्या करता है तो दूसरा पश्चिम की ओर मुँह किये नमाज़ पढ़ता है, इसीलिए कबीर ने दोनों धर्मों के बाहरी विधि-विधानों का कड़े शब्दों में खंडन किया। एक स्थान पर कहते हैं—

पत्थर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहाड़।
ताते यह चक्की भली, पीस खाय संसार ।।

तो दूसरे स्थान पर लिखते हैं —

कंकर पत्थर जोरि के, मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्लाँ बाँग दे, बहिरा हुआ खुदाय ।।

इस प्रकार की खंडनात्मक उक्तियों से दोनों ही धर्मों वाले कबीर से चिढ़ गये; फलतः वे अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल न हो सके। फिर भी निम्न वर्ग के लोगों पर उनके उपदेशों का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। आचरण की शुद्धता, अहिंसा, सत्य आदि सद्गुणों के द्वारा मनुष्यों को आत्मोन्नति का मार्ग दिखा कर समाज के उपेक्षित अंग अर्थात् निम्न वर्ग का उन्होंने विशेष उपकार किया। यद्यपि कबीर पढ़े-लिखे न थे फिर भी वे अलौकिक प्रतिभा-संपन्न महापुरुष थे। इनकी उक्तियों में स्थान-स्थान पर रहस्यवाद का अभिव्यंजन हुआ है।

कबीर की भाषा सधुक्कड़ी अथवा खिचड़ी है जिसमें व्रज, अवधी, खड़ीबोली, पंजाबी आदि अनेक प्रांतीय भाषाएँ मिली-जुली हैं।

कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' कहलाता है। इसके तीन भाग हैं—१ रमैणी, २ शब्द, ३ साखी।

कहते हैं कि कबीर की मृत्यु के पश्चात् उनके हिन्दू और मुसलमान शिष्यों में दाह-संस्कार करने और दफनाने के संबंध में झगड़ा हो गया था किन्तु चादर उठा कर देखने पर शव के स्थान पर कुछ फूल मिले। आधे फूलों को हिन्दुओं ने लेकर दाह-संस्कार किया और आधे को मुसलमानों ने लेकर दफ़ना दिया। संभवतः कबीर ने स्वयं ही पहले से यह व्यवस्था कर दी थी।

## शब्द (पद), साखी

### सार और समीक्षा

कबीर के ये रहस्यवाद-संबंधी पद 'बीजक' नामक कबीर के संग्रह से उद्धृत किये गये हैं। प्रथम पद में आत्मा परमात्मा को प्रियतम के रूप में स्वीकार कर एकरूपता के लिए उत्सुकता प्रकट करती है। दूसरे तीसरे पद में आत्मा परमात्मा के आध्यात्मिक विवाह का वर्णन है। चौथे पद में शरीर रूपी चर्खे का वर्णन किया गया है। पांचवें में प्रभु-प्रेम में लीन आत्मा का

माया के जाल में न फँसकर कर्मचक्र से छूटने का वर्णन है। छठे पद में काम-क्रोध आदि से भरे संसार-जाल से विदा होकर प्रियतम के पास ससुराल में आत्मा के जाने की बात कही गई है। सातवें में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों एवं ब्रह्मरंध्र आदि का वर्णन किया गया है। आठवें नवें पद में अद्वैत-वाद की झलक है। आगामी पदों में भी इसी प्रकार आत्मा और परमात्मा के विविध रूपों के चित्र अंकित किये गये हैं। ये सब पद रहस्यवाद से संबद्ध हैं।

कबीर की साखियों में अनेक उपयोगी विषयों का विवेचन किया गया है। शैली की दृष्टि से कबीर की रचनाएँ दो रूपों में मिलती हैं:—१ साखी या दोहे, २ पद जिन्हें शब्द या गीत भी कहते हैं। इस संग्रह में दोनों प्रकार की रचनाएँ उद्धृत की गई हैं।

सन्त कबीर की साखियों व पदों की भाषा में व्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी एवं खड़ीबोली का अद्भुत सम्मिश्रण है। उसमें विद्यापति के समान तत्सम पदों को जान-बूझ कर बिगाड़ने की कहीं प्रवृत्ति नहीं है। साखियों में सत्य, दया, अहिंसा, प्रेम, संतोष आदि सात्त्विक गुणों की गरिमा का सुन्दर वर्णन हुआ है। हिन्दू-मुस्लिम-एकता की भावना से कबीर ने अपनी रचनाओं में धार्मिक बाह्य विधि-विधानों का भी यत्र-तत्र खंडन किया है। कबीर के समय में एक ओर योगियों का तो दूसरी ओर सूफी संतों का पर्याप्त प्रचार था। कबीर की कविताओं में इन दोनों के प्रभाव स्पष्ट लक्षित होते हैं। उनके रहस्य-वाद में आत्मा-परमात्मा के विरह-मिलन के गीतों के अतिरिक्त योगियों के षट्चक्रों एवं इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आदि नाड़ियों का विस्तृत वर्णन है। कबीर के पदों में रूपकों के प्रयोगों में 'जुलाहा' जीवन से संबद्ध वस्तुओं का खुल-कर प्रयोग हुआ है। 'को बीनें प्रेम लागे री माई को बीनें' आदि अनेक पदों में यह प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। इस प्रकार निर्गुणधारा की भाषा, विषय व शैली आदि सभी का कबीर की कविताओं में पूर्ण प्रतिनिधित्व हुआ है।

## रहस्यवाद-सम्बन्धी पद

वाल्हा आव हमारे गेह रे, तुम बिन दुखिया देह रे।
सब को कहै तुम्हारी नारी, मोकों इहै अदेह रे।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे।
आन न भावै, नींद न आवै, ग्रिह बन धरै न धीर रे।
ज्यूँ कामी कों काम पियारा ज्यूँ प्यासे कूँ नीर रे।
है कोई ऐसा पर उपकारी, हरिसूँ कहै सुनाइ रे।
ऐसे हाल कबीर भये हैं, बिन देखें जिव जाय रे।

दुलहिनी गावहु मंगलचार, हम घरि आए हो राजा राम भतार।
तन रत करि मैं मन रति करि हूँ, पंच तत्त बराती।
रामदेव मोरे पाहुने आए, मैं जोवन में माती।
सरीर सरोवर वेदी करि हूँ, ब्रह्मा बेद उचार।
रामदेव सँगि भाँवर लेहूँ, धनि धनि भाग हमार।
सुर तैंतीसूँ कौतिग आए, मुनिवर सहस अठासी।
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी।

मैं सासने पीव गौंहनि आई।
सांई संग साध नहीं पूगी, गयो जोबन सुपिना की नांई।
पंच जना मिलि मंडप छायो, तीनि जनां मिलि लगन लिखाई।
सखी सहेली मंगल गावें, सुख दुख माथै हलद चढ़ाई।
नाना रंगैं भाँवरि फेरी, गाँठि जोरि बैठे पति ताई।
पूरि सुहाग भयो बिन दुल्हा, चौक कै रंगि धरचौ सगौ भाई।
अपने पुरिष मुख कबहुँ न देख्यो, सती होत समझी समझाई।
कहै कबीर हूँ सर रचि मरिहूँ, तिरौं कन्त लै तूर बजाई।

जो चरखा जरि जाय बढ़या ना मरै।
मैं कातों सूत हजार चरखुला जिन जरै।

बाबा मोर ब्याह कराव अच्छा बरहि तकाय,
जौ लौं अच्छा वर न मिलै तौ लौं तुमहिं बिहाय।
प्रथमें नगर पहूँचते परि गौ सोग संताप,
एक अचंभा हम देखा जो बिटिया ब्याहल बाप।
समधी के घर समधी आए आए बहू के भाय,
गोड़े चूल्हा दै दै चरखा दियो दिढ़ाय।
देव लोक मर जायँगे एक न मरै बढ़ाय,
यह मन रंजन कारणै चरखा दियो दिढ़ाय।
कहहि कबीर सुनौ हो संतो चरखा लखै जो कोय,
जो यह चरखा लखि परै ताको आवागमन न होय।

को बीनै प्रेम लागौ री, माई को बीनै।
राम रसायन माते री, माई को बीनै।
पाई पाई तू पुतिहाई, पाई की तुरिया बेच खाई री, माई को बीनै।
ऐसे पाई पर बिथुराई, त्यूं रस आनि बनायो री, माई को बीनै।
नाचै ताना नाचै बाना, नाचै कूंच पुराना री, माई को बीनै।
कर गहि बैठि कबीरा नाचै, चूहै काट्या ताना री, माई को बीनै।

अब मोहिं ले चल नणद के बीर, अपने देसा।
इन पंचन मिलि लूटी हूँ, कुसंग आहि बिदेसा।
गंग तीर मोरी खेती बारी, जमुन तीर खरिहाना।
सातों बिरही मेरे नीपजे, पंचू मोर किसाना।
कहै कबीर यह अकथ कथा है, कहता कही न जाई।
सहज भाइ जिहि ऊपजै, ते रमि रहै समाई।

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मनि चढ़ा मगन रस पीवै त्रिभवन भया उजियारा।
गुड़ करि ग्यांन ध्यान कर महुवा भव भाठी कर भारा,
सुषमन नारी सहज समानी पीवै पीवन हारा

दोइ पुड़ जोड़ि चिगाई भाठी चुया महा रस भारी,
काम क्रोध दोइ किया पलीता छूटि गई संसारी।
सुन्नि मंडल में मंदला बाजै तहां मेरा मन नाचै,
गुर प्रसादि अमृत फल पाया सहजि सुषमना काछै।
पूरा मिल्या तबैं सुष उपज्यो तन की तपति बुझानी,
कहै कबीर भव बंधन छूटै जोतिहिं जोति समानी।

मैं सबनि में औरनि में हूँ सब,
मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो।
कोई कहौ कबीर कोई कहौ राम राई हो।
ना हम बार बूढ़ नांही हम ना हमरे चिलकाई हो,
पठरा न जाऊँ अरबा नहीं आंऊँ सहजि रहूँ हरिभाई हो।
बोढ़न हमरे एक पछेबरा लोक बोलैं इकताई हो,
जुलहैं तनि बुनि पांन न पावल बारि बुनी दस ढाई हो।
त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल तब हमरौ नांऊँ राम राई हो,
जग मैं देखौं जन न देखैं मोही इहि कबीर कछु पाई हो।

दरियाव की लहर दरियाव है जी दरियाव और लहर में भिन्न कोयम।
उठे तो नीर है बैठे तो नीर है कहो दूसरा किस तरह होयम।
उसी नाम को फेर के लहर धरा लहर के कहे क्या नीर खोयम।
जक्त ही फेर सब जक्त है ब्रह्म में ज्ञान करि देखि कब्बीर गोयम।

है कोई दिल दरवेश तेरा।
नासूत मलकूत जबरूत को छोड़िके, जाइ लाहूत पर करै डेरा
अकिल की फहम ते इलम रोसन करै, चढ़ै खरसान तब होय उजेरा
हिर्स हैवान को मारि मरदन करै नफस सैतान जब होय जेरा।
गौस और कुतुब दिल फिकर जाका करै फतह कर किला तहँ दौर फेरा,
तखत पर बैठिके अदल इन्साफ़ कर दोजख औ भिस्त का करु निबेरा।

अजाब सवाब का सबब पहुँचे नहीं, जहां है यार महबूब मेरा,
कहै कब्बीर वह छोड़ि आगे चला हुआ असवार तब दिया दुरेरा ।

मन मस्त हुआ तब क्यों बोलै ।

हीरा पायो गांठ गठियायो, बार बार वाको क्यों खोलै ।
हलकी थी जब चढ़ी तराज़ू, पूरी भई तब क्यों तोलै ।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोलै ।
हंसा पाये मान सरोवर, ताल तलैया क्यों डोलै ।
तेरा साहब है घट मांही, बाहर नैना क्यों खोलै ।
कहै कबीर सुनो भई साधो, साहिब मिल गये तिल ओलै ।

तोरी गठरी में लागे चोर, बटोहिया का रे सोवै ।
पांच पचीस तीन हैं चुरवा यह सब कीन्हा सोर,
बटोहिया का रे सोवै ।
जागु सबेरा बाट अनेड़ा फिर नहिं लागै जोर,
बटोहिया का रे सोवै ।
भवसागर इक नदी बहतु है बिन उतरे जाव बोर,
बटोहिया का रे सोवै ,
कहै कबीर सुनो भाई साधो जागत कीजे भोर,
बटोहिया का रे सोवै ।

घूंघट का पट खोल रे तोको पीव मिलैंगे ।
घट घट में वह सांई रमता कटुक बचन मति बोल रे ।
धन जोबन का गर्व न करिये झूठा पंचरंग चोल रे ।
सुन्न महल में दिया न बार ले आसा से मत बोल रे ।
जोग जुगत री रंग महल में पिय पाये अनमोल रे ।
कहत कबीर आनन्द भयो है बाजत अनहद ढोल रे ।

नैहर में दाग लगाय आई चुनरी ।

ऊ रंगरेजवा कै मरम न जानै, नहिं मिले धोबिया कवन करै उजरी ।
तन कै कूंडी ज्ञान सउंदन, साबुन महंग बिकाय या नगरी ।
पहिरि ओढ़ि कै चली ससुरिया, गौवां के लोग कहैं बड़ी फुहरी ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, बिन सतगुरु कबहूँ नहिं सुधरी ।

झीनी झीनी बीनी चदरिया ।

काहे कै ताना काहे कै भरनी कौन तार से बीनी चदरिया ।
इंगला पिंगला ताना भरनी सुषमन तार से बीनी चदरिया ।
आठ कमल दल चरखा डोलै पांच तत्त गुन तीनी चदरिया ।
सांई को सियत मास दस लागे, ठोक ठोक कै बीनी चदरिया ।
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि कै मैली कीनी चदरिया ।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीनीं चदरिया ।

## साखी

कबीर सभ ते हम बुरे हम तजि सभु कोइ ।
जिनि ऐसा करि बूझिआ मीतु हमारा सोइ ।।१।।

कबीर चन्दन का बिरवा भला बेढ़ियो ढाक पलास ।
ओइ भी चन्दनु होइ रहे बसै जु चन्दन पासि ।।२।।

कबीर बांसु बडाई बूडिया इउ मत डूबहु कोइ ।
चन्दन कै निकटे बसै बांसु सगन्ध न होइ ।।३।।

कबीर माइआ चोरटी मुसि मुसि लावै हाट ।
एकु कबीरा ना मुसै जिनि कीनी बारह बाट ।।४।।

कबीर जगु काजल की कोठरी अंध परे तिस माहि ।
हउ बलिहारी तिन्ह कउ पैसि जु नीकसि जाहि ।।५।।

कबीर बेड़ा जरजरा फूटे छेंक हजार।
हरुए हरुए तिरि गए डूबे जिन सिरभार ॥६॥

कबीर ऐसा कोई न जनमिओ अपने घर लावै आगि।
पांचउ लरिका जारि कै रहै राम लिव लागि ॥७॥

मारगि मोती बीथरे अन्धा निकसिओ आइ।
जोति बिना जगदीस की जगतु उलंघे जाइ ॥८॥

बूडा बंसु कबीर का उपजियो पूत कमाल।
हरि का सिमरनु छाडि कै घरि लै आया मालु ॥९॥

कबीर सूता किआ करहि बैठा रहु अरु जागु।
जाके संग ते बीछुरा ताही के संग लागु ॥१०॥

कबीर ठाकुर पूजहि मोल ले मन हठ तीरथ जाहि।
देखा देखी स्वांगु धरि भूले भटका खाहि ॥११॥

कबीर कागद की ओबरी मनु के करम कपाट।
पाहन बोरी पिरथमी पंडित पाड़ी बाट ॥१२॥

कबीर ऐसा जंतु इकु देखिआ जैसी धोई लाख।
दीसै चंचलु बहु सुना मतिहीना नापाक ॥१३॥

कबीर कस्तूरी भइया भवर भए सम दास।
जिउ जिउ भगति कबीर की तिउ तिउ राम निवास ॥१४॥

ऊच भवन कनकामनी सिखरि धजा फहराइ।
ता ते भली मधूकरी संत संग गुन गाइ ॥१५॥

कबीर परभाते तारे खिसहि तिउ इहु खिसै सरीरु।
ए दुइ अखर न खिसहि सो गहि रहियो कबीरु ॥१६॥

कबीर मुलां मुनारे किआ चढ़हि सांई न बहरा होइ।
जा कारनि तू बांग देहि दिल ही भीतरि जोइ ॥१७॥

सेख सबूरी बाहरा किआ हज काबै जाइ।
कबीर जा की दिल साबित नहीं ताकउ कहां खुदाई ॥१८॥

कबीर जोरी कीए जुलमु है कहता नाउ हलालु।
दफतरि लेखा मांगीऐ तब होइगो कउनु हवालु ॥१९॥

कबीर खूबु खाना खीचरी जामहि अंम्रितु लोनु।
हेरा रोटी कारने गला कटावै कउनु ॥२०॥

कबीर जा घर साध न सेवीअहि हरि की सेवा नाहि।
ते घर मरघट सारखे भूत बसहि तिन माहि ॥२१॥

कबीर गूंगा हूआ बावरा बहरा हूआ कान।
पावहु ते पिंगल भइया मारिआ सतिगुर बान ॥२२॥

कबीर हज काबै हउ जाइ था आगे मिलिआ खुदाइ।
सांई मुझ सिउ लरि परिआ तुझै किन्हि फुरमाई गाइ ॥२३॥

कबीर लेखा देना सुहेला जउ दिल सूची होइ।
उसु साचे दीबान महि पला न पकरै कोइ ॥२४॥

कबीर तूं तूं करता तूँ हुआ मुझ महि रहा न हूँ।
जब आपा पर का मिटि गया जत देखउ तत तूँ ॥२५॥

कबीर भांग माछुली सुरापानि जो जो प्रानी खांहि।
तीरथ बरत नेम कीए ते सभै रसातल जांहि ॥२६॥

सुनु सखी पीअ महि जीउ बसै जीअ महि बसै कि पीउ।
जीउ पीउ बूझहु नही घटि महि जीउ कि पीउ ॥२७॥

हरि है खांडु रेतु महि बिखरी हाथी चुनी न जाइ।
कहि कबीर गुरि भली बुझाई, कीटी होइ कै खाइ ॥२८॥

# मलिक मुहम्मद जायसी

## जीवन-परिचय

जन्म सं० १५५० जायस में                                                   मृत्यु सं० १६०० असेठी में

ये प्रेममार्गी शाखा के प्रतिनिधि एवं सर्वश्रेष्ठ कवि थे। इनका अमेठी के राजघराने में पर्याप्त सम्मान था। ये काने और कुरूप थे। एक बार शेरशाह इन्हें देख कर हँस पड़ा। इस पर इन्होंने कहा--

"मोहि का हँससि कि कोहरहि।"

यद्यपि ये जन्म से मसलमान थे तथापि हृदय से इन्हें हिन्दू कहा जा सकता है। मुसलमान होते हुए भी इन्होंने हिन्दू वीरशिरोमणि की प्रशंसा में अपना प्रसिद्ध महाकाव्य "पद्मावत" लिखा। पद्मावत प्रेम-प्रधान महाकाव्य है; इसके पूर्वार्ध की कथा अभी तक कवि की अपनी कल्पना कही जाती थी किन्तु प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् और रिसर्चस्कालर श्री पं० भगवद्दत्त बी० ए० ने 'श्रीस्वाध्याय' के साहित्यांक में एक लेख लिख कर यह सिद्ध कर दिया कि पद्मावत का पूर्वार्ध जायसी की अपनी कल्पना नहीं है, प्रत्युत यह कथा कल्किपुराण से ली गई है और उत्तरार्ध ऐतिहासिक है। यद्यपि जायसी प्रेममार्गी शाखा के कवि थे, तथापि इसमें वीररस का भी स्थान-स्थान पर सुन्दर परिपाक हुआ है। उनका यह काव्य प्रेम-प्रधान ही है। इस काव्य की भाषा अवधी है और यह दोहा, चौपाई, छंद तथा फ़ारसी की मसनवी पद्धति में लिखा गया है। रहस्यवाद की जितनी सुन्दर अवतारणा इस काव्य में हुई है, उतनी अन्य किसी भी प्राचीन महाकाव्य में नहीं हो पाई। हिन्दी प्राचीन महाकाव्यों में 'राम-चरितमानस' के बाद 'पद्मावत' का ही स्थान है। हिन्दू मुस्लिम हृदय के अजनबीपन को मिटा कर एक दूसरे को निकट लाने के लिए जायसी

**ने स्तुत्य और सफल प्रयत्न किया, इसमें कुछ संदेह नहीं। 'अखरावट' और 'आख़री कलाम' इनकी दो और पुस्तकें भी हैं।**

## पद्मावत

### सार और समीक्षा

**पार्वती-महेश-खंड**—यह प्रकरण मलिक मुहम्मद जायसी के 'पद्मावत' नामक महाकाव्य से लिया गया है। महाराज रत्नसेन ने पद्मिनी के विरह में जलकर भस्म हो जाने का जब निश्चय कर लिया तो पार्वती जी से उनका दुःख नहीं देखा गया और तत्काल भगवान् शंकर और पार्वती ने प्रकट होकर उसे सिंहलगढ़ पर पहुँचने की विधि बताई। कवि ने सिंहलगढ़ के दस द्वारों के प्रसंग में समासोक्ति अलंकार के द्वारा शरीर के दस द्वारों का भी उल्लेख कर दिया है। भगवान् शिवशंकर से प्राप्त सिद्धि-गुटिका के द्वारा रत्नसेन सिंहलगढ़ में पहुँच गया। योगीवेषधारी रत्नसेन और उसके साथ में आये हुए राजकुमारों को गढ़ के द्वार पर आया देख गंधर्वसेन बहुत क्रुद्ध हुए और योगियों को पकड़ने की आज्ञा दे दी। इधर हीरामणि तोते ने रत्नसेन और पद्मिनी को एक दूसरे की अवस्था से भी सूचित कर दिया।

**नागमती-वियोग-खंड**—इसमें नागमती का विरह-वर्णन किया गया है। यह विरह-वर्णन और नागमती का संदेश हिन्दी-साहित्य में अनुपम विरह-काव्य है। **राजा-बादशाह-युद्ध-खंड** में अलाउद्दीन और रत्नसेन के युद्ध का अत्यन्त प्रभावशाली चित्र अंकित हुआ है। इस प्रकार उद्धृत अंशों में जायसी के काव्य के प्रेम और शौर्य के दोनों ही स्थल स्पष्ट लक्षित हो जाते हैं।

पद्मावत सूफ़ियों की 'मसनवी' पद्धति पर लिखा हुआ एक प्रेम-प्रधान महाकाव्य है। इसमें अवधी भाषा का स्वाभाविक सौंदर्य दर्शनीय है। भाषा में तद्भव शब्दों की प्रमुखता है। विदेशी अरबी, फ़ारसी आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग इसमें नहीं के बराबर ही हुआ है। जायसी 'जितना' या 'जैते' शब्द का प्रयोग न कर 'जावत' का ही प्रयोग करते हैं। सूफ़ी सिद्धांतों में विरह को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। जो आत्मा अपने प्रियतम के विरहानल

में जितनी अधिक तपेगी वह उतनी निर्मल तथा पवित्र होकर शीघ्र प्रियतम को प्राप्त करने की अधिकारिणी हो जायगी। तदनुसार जायसी ने नागमती के विरह-वर्णन में अपनी संपूर्ण शक्ति व साधना को लगाकर अनुपम भावसामग्री प्रस्तुत कर दी है।

यह तन जारों छार कै कहौं कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरैं जहँ पाँव॥

जैसे मार्मिक विरहोद्‌गार, जायसी के काव्य ही में मिल सकते हैं। प्रेम और विरह के अतिरिक्त अलाउद्दीन और रत्नसेन के युद्ध के प्रसंग में वीर रस की विशद अवतारणा हुई है। इसीलिए कहा गया है कि पद्मावत जहां एक ओर प्रेम-प्रबंध है वहाँ वह अंशतः वीर-काव्य भी है। लेखक ने पद्मावत में भारतीय आचार-व्यवहार एवं सामाजिक रीति-रिवाजों का बहुत ध्यान रखा है। 'सती'-प्रथा के प्रति कवि के हृदय में विशेष आदर की भावना है। इस प्रकार जायसी के पद्मावत में प्रेममार्गी शाखा की सब विशेषताएँ अपने परम प्रौढ़ रूप में प्रकट हुई हैं।

## पार्वती-महेश-खण्ड

**ततखन पहुँचे आइ महेसू। बाहन बैल, कुस्टि कर भेसू॥**
**सेसनाग जाके कँठमाला। तनु भभूति, हस्ती कर छाला॥**
**पहुँची रुद्र-कवँल कै गटा। ससि माथें औ सुरसरि जटा॥**
**चँवर, घंट औ डँवरू हाथा। गौरा पारवती धनि साथा॥**
**अवतहि कहेन्हि न लावहु आगी। तेहि कै सपथ जरहु जेहि लागी॥**
**की तप करै न पारेहु, की रे नसाएहु जोग ?**
**जियत जीउ कस काढ़हु ? कहहु सो मोंहि वियोग॥**
**कहेहि मोंहि बातन बिलमावा। हत्या केरि न डर तोहि आवा॥**
**जरैं देहु, दुख जरौं अपारा। निस्तर पाइ जाउँ एक बारा॥**
**जो अधजर सो बिलँब न लावा। करत विलंब बहुत दुख पावा॥**

एतना बोल कहत मुख उठी बिरह कै आगि ।
जौं महेस न बुझावत जाति सकल जग लागि ।।

पारवती मन उपना चाऊ । देखौं कुँवर केरि सत भाऊ ।।
ओहि एहि बीच, कि पेमहि पूजा । तन मन एक, कि मारग दूजा ।।
गौरइ हँसि महेस सौं कहा । निहचै एहि बिरहानल दहा ।।
निहचै यह ओहि कारन तपा । परिमल पेम न आछै छपा ।।
बदन पियर जल डभकहिं नैना । परगट दुवौ, पेम के बैना ।।
यह एहि जनम लागि ओहि सीझा । चहै न औरहि ओही रीझा ।।
महादेव देवन के पिता । तुम्हरी सरन राम रन जिता ।।
एहू कहँ तस मया करेहू । पुरवहु आस, कि हत्या लेहू ।।
सुनि के महादेव कै भाखा । सिद्ध पुरुष राजै मन लाखा ।।
रोवत बूड़ि उठा संसारू । महादेव तब भएउ मयारू ।।
अब तैं सिद्ध भएसि सिधि पाई । दरपन-कया छूटि गइ काई ।।
कहौं बात अब हौं उपदेसी । लागु पंथ भूले परदेसी !
जो लगि चोर सेंधि नहिं देई । राजा केरि न मूसै पेई ।।

कहौं सो तोहि सिंघल गढ़ है खंड सात चढ़ाव ।
फिरा न कोई जियत जिउ सरग पंथ देइ पाव ।।

गढ़ तस बाँक जैसि तोरि काया । पुरुष देखु ओही कै छाया ।।
पाइय नाहिं जूझ हठि कीन्हे । जेइ पावा तेइ आपुहि चीन्हे ।।
नौ पौरी तेहि गढ़ मझियारा । औ तहँ फिरहिं पाँच कोटवारा ।।
दसवँ दुवार गुपुत एक ताका । अगम चढ़ाव, बाट सुठि बाँका ।।
भेदै जाइ सोइ वह घाटी । जो लहि भेद चढ़ै होइ चाँटी ।।
गढ़ तर कुंड, सुरंग तेहि माँहा । तहँ वह पंथ कहौं तोहि पाँहा ।।

जस मरजीया समुद धँस हाथ आव तब सीप ।
ढूँढ़ि लेइ जो सरग-दुआरी चढ़ै सो सिंघलदीप ।।

दसवँ द्वार ताल कै लेखा । उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा ॥
जाइ सो तहां साँस मन बंधी । जस धँसि लीन्ह कान्ह कालिंदी ॥
तू मन नाथु मारी कै साँसा । जो पै मरहि अबहिं करु नासा ॥
परगट लोकाचार कहु बाता । गुपुत लाउ मन जासौं राता ॥
"हौं हौं" कहत सबै मति खोई । जौं तू नाहिं आहिं सब कोई ॥

## राजा-गढ़-छेंका-खंड

सिधि-गुटिका राजै जब पावा । पुनि भइ सिद्धि गनेस मनावा ॥
जब संकर सिधि दीन्ह गुटेका । परी हूल, जोगिन्ह गढ़ छेंका ॥
पौरि पौरि गढ़ लाग केवारा । औ राजा सौं भई पुकारा ॥
जोगी आइ छेंकि गढ़ मेला । न जनौं कौन देस तें खेला ॥

भएउ रजायसु देखौ को भिखारि अस ढीठ ।
बेगि बरजि तेहि आवहु जन दुइ पठै बसीठ ॥

उतरि बसीठन्ह आइ जोहारे । की तुम जोगी, की बनिजारे ॥
भएउ-रजाइसु आगे खेलहिं । गढ़तर छाँडि अनत होइ मेलहि ॥
अस लागेहु केहि के सिख दीन्हे । आएहु मरै हाथ जिउ लीन्हे ॥
इहाँ इन्द्र अस राजा तपा । जबहिं रिसाइ सूरि डरि छपा ॥
हौ बनिजार तौ बनिज बेसाहौ । भरि बैपार लेहु जो चाहौ ॥
हौ जोगी तो जुगुति सौं माँगौ । भुगुति लेहु, लै मारग लागौ ॥
आनु जो भीखि हौं आएउँ लेई । कस न लेउँ जौं राजा देई ॥
पदमावति राजा कै बारी । हौं जोगी ओहि लागि भिखारी ॥
खप्पर लेइ बार भा माँगौ । भुगुति देइ, लेइ मारग लागौं ॥

जोगी बार आव सो जेहि भिच्छा कै आस ।
जो निरास दिढ़ आस न कित गौनै केहु पास ?

सुनि बसीठ मन उपनी रीसा । जौ पीसत घुन जाइहि पीसा ॥
जोगी अस कहुँ कहै न कोई । सो कहु बात जोग जो होई ॥

आगे देखि पाँव धरु, नाथा । तहाँ न हेरु टूट जहँ माथा ॥
बसिठन्ह जाइ कही अस बाता । राजा सुनत कोह भा राता ॥
ठावँहि ठाँव कुँवर सब माखे । केइ अब लीन्ह जोग, केइ राखे ?
अबहिं बेगिहि करौ संजोऊ । तस मारहु हत्या नहिं होऊ ॥
मंत्रिन्ह कहा रहौ मन बूझे । पति न होइ जोगिन्ह सौं जूझे ॥
ओहि मारे तो काह भिखारी । लाज होइ जौं माना हारी ॥

आछै देहु जो गढ़ तरे, जनि चालहु यह बात ।
तहँ जो पाहन भख करहिं अस केहिके मुख दाँत ?

गए बसीठ पुनि बहुरि न आए । राजै कहा बहुत दिन लाए ॥
न जनौं सरग बात दहुँ काहा । काहु न आइ कही फिरि चाहा ॥
पंख न काया, पौन न पाया । केहि बिधि मिलौं होइ कै छाया ?
सँचरि रकत नैनहिं भरि चूआ । रोइ हँकारेसि माझी सूआ ॥
परी जो आँसु रकत कै टूटी । रेंगि चली जस बीर-बहूटी ॥
ओही रकत लिखि दीन्ही पाती । सुआ जो लीन्ह चोंच भइ राती ॥
बाँधी कंठ परा जरि काँठा । बिरह क जरा जाइ कित नाठा ?

मसि नैना, लिखनी बरुनि, रोइ रोइ लिखा अकत्थ ।
आखर दहै, न कोइ छुवै, दीन्ह परेवा हत्थ ॥

आखर जरहिं न काहू छूआ । तब दुख देखि चला लेइ सूआ ॥
कंचन-तार बाँधि गिउ पाती । लेइ गा सुआ जहाँ धनि राती ॥
जैसे कवँल सूर के आसा । नीर कंठ रहि मरत पियासा ॥
बिसरा भोग सेज सुख-बासा । जहाँ भौंर सब तहाँ हुलासा ॥
तौ लगि धीर सुना नहिं पीऊ । सुना त घरी रहै नहिं जीऊ ॥
तौ लगि सुख हिय पेम न जाना । जहाँ पेम कत सुख बिसरामा ?
अगर चँदन सुठि दहै सरीरू । औ भा अगिनि कया कर चीरू ॥
कथा कहानी सुनि जिउ जरा । जानहु घीउ बसंदर परा ॥

बिरह न आपु सँभारै, मैल चीर, सिर रूख ।
पिउ पिउ करत राति दिन जस पपिहा मुख सूख ।।

ततखन गा हीरामन आई । मरत पियास छाँह जनु पाई ।।
भल तुम्ह, सुआ ! कीन्ह है फेरा । कहहु कुसल अब पीतम केरा ।।
बाट न जानौं, अगम पहारा । हिरदय मिला न होइ निनारा ।।
मरम पानि कर जान पियासा । जो जल महँ ता कहँ का आसा ?
का रानी यह पूछहु बाता । जिनि कोइ होइ पेम कर राता ।।
तुम्हरे दरसन लागि बियोगी । अहा सो महादेव मठ जोगी ।।
तुम्ह बसंत लेइ तहाँ सिधाई । देव पूजि पुनि ओहि पहँ आई ।।

दिस्टि बान तस मारेहु, घायल भा तेहि ठाँव ।
दूसरि बात न बोलै, लेइ पदमावति नाँव ।।

ऐस बसंत तुमहि पै खेलहु । रकत पराए सेंदुर मेलहु ।।
तुम्ह तौ खेलि मँदिर महँ आई । ओहिक मरम पै जान गोसाईं ।।
कहेसि जरै को बारहि बारा । एकहि बार होहुँ जरि छारा ।।
सर रचि चहा आग जौ लाई । महादेव गौरी सुधि पाई ।।
आइ बुझाइ दीन्ह पथ तहाँ । मरन-खेल कर आगम जहाँ ।।
उलटा पंथ पेम के बारा । चढ़ै सरग, जौ परै पतारा ।।
अब धँसि लीन्ह चहै तेहि आसा । पावै साँस, कि मरै निरासा ।।

पाती लिखि सो पठाई हहै सबै दुख रोइ ।
दहुँ जिउ रहै कि निसरै, काह रजायसु होइ ?

कहि कै सुआ जो छोड़ेसि पाती । जानहु दीप छुवत तस ताती ।।
गीउ जो बाँधा कंचन-तागा । राता साँव कंठ जरि लागा ।।
वह तोहि लागि कया सब जारी । तपत मीन, जल देहि पवारी ।।

तोहि कारन वह जोगी भसम कीन्ह तन दाहि ।
तू असि निठुर निछोही बात न पूछै ताहि ।।

कहेसि "सुआ ! मोसौं सुनु बाता । चहौं तो आज मिलौं जस राता ।।
पै सो मरम न जाना भोरा । जानै प्रीति जो मरि कै जोरा ।।
हौं जानति हौं अबहीं काँचा । ना वह प्रीति रंग थिर राँचा ।।
ना वह भएउ मलयगिरि बासा । ना वह रबि होइ चढ़ा अकासा ।।
ना वह भएउ भौंर कर रंगू । ना वह दीपक भएउ पतंगू ।।
ना वह करा भृंग कै होई । ना वह आपु मरा जिउ खोई ।।
ना वह प्रेम ओटि एक भएऊ । ना ओहि हिये माँझ डर गएऊ ।।

तेहि का कहिय रहब जिउ रहै जो पीतम लागि ?
जहँ वह सुनै लेहि धँसि का पानी का आगि ।।

पुनि धनि कनक-पानि मसि माँगी । उतर लिखत भीजी तन आँगी ।।
तस कंचन कहँ चहिय सोहागा । जौं निरमल नग होइ तौ लागा ।।
हौं जो गई सिव-मंडप भोरी । तहँवाँ कस न गाँठि तैं जोरी ?
भा बिसँभार देखि कै नैना । सखिन्ह लाज का बोलौं बैना ?
खेलहि मिस मैं चन्दन घाला । मकु जागसि तौ देउँ जयमाला ।।
तबहुँ न जागा, गा तू सोई । जागे भेंट, न सोए होई ।।
अब जो सूर होइ चढ़ै अकासा । जौं जिउ देह तो आवै पासा ।।

तौ लगि भुगुति न लेइ सका रावन सिय जब साथ ।
कौन भरोसे अब कहौं जीउ पराए हाथ ।।

हौं पुनि इहाँ ऐस तोहि राती । आधी भेंट पिरीतम-पाती ।।
तहुँ जौ प्रीत निबाहै आँटा । भौंर न देख केत कर काँटा ।।
होइ पतंग अधरन्ह गहु दीया । लेसि समुद धँसि होइ मरजीया ।।
रातु रंग जिमि दीपक बाती । नैन लाउ होइ सीप सेवाती ।।
चातक होइ पुकारु पियासा । पीउ न पानि सेवाति कै आसा ।।
सारस कर जस बिछुरा जोरा । नैन होहि जस चन्द चकोरा ।।
होहि चकोर दिस्टि ससि पाहाँ । औ रबि होहि कँवलदल माहाँ ।।

महुँ तेसै होऊँ तोहि कहँ सकहि तौ ओर निबाहु ।
राहु बेधि अरजुन होइ जीतु दुरपदी ब्याहु ।।

राजा इहाँ ऐस तप झूरा । भा जरि बिरह छार कर कूरा ।।
नैन लाइ सो गएउ बिमोहीं । भा बिनु जिउ, दीन्हेसि ओही ।।
सुए जाइ जब देखा तासू । नैन रकत भरि आए आँसू ।।
देखेसि जागि सुआ सिर नावा । पाती देइ मुख बचन सुनावा ।।
गुरु के बचन स्रवन दुइ मेला । कीन्हि सुदिस्टि, बेगि चलु चेला ।।
पौन साँस तो सौं मन लाई । जोवै मारग दिस्टि बिछाई ।।

आवहु सामि सुलच्छना जीउ बसै तुम्ह नावँ ।
नैनहिं भीतर पंथ है हिरदय भीतर ठावँ ।।

सुनि पदमावति कै असि मया । भा बसन्त, उपनी नइ कया ।।
सुआ क बोल पौन होइ लागा । उठा सोइ, हनुवँत अस जागा ।।
चाँद मिलै कै दीन्हेसि आसा । सहसौ कला सूर परगासा ।।
पाति लीन्हि, लेइ सीस चढ़ावा । दीठि चकोर चन्द जस पावा ।।
उठा फूलि हिरदय न समाना । कंथा टूक टूक बेहराना ।।
लीन्हे सिधि साँसा मन मारा । गुरू मछन्दरनाथ सँभारा ।।
खोजि लीन्ह सो सरग-दुवारा । बज्र जों मूदे जाइ उघारा ।।

बाँक चढ़ाव सरग-गढ़ चढ़त गएउ होइ भोर ।
भइ पुकार गढ़ ऊपर चढ़े-सेंधि देइ चोर ।।

## नागमती-वियोग-खण्ड

नागमती चितउर-पथ हेरा । पिउ जो गए पुनि कीन्ह न फेरा ।।
नागर काहु नारि बस परा । तेइ मोहि पिय मो सौं हरा ।।
सुआ काल होइ लेइगा पीऊ । पिउ नहिं जात, जात बरु जीऊ ।।
भएउ नरायन बावँन करा । राज करत राजा बलि छरा ।।
करन पास लीन्हेउ कै छंदू । बिप्र रूप धरि झिलमिल इन्दू ।।

मानत भोग गोपिचँद भोगी । लेइ अपसबा जलंधर जोगी ॥
लेइगा कृस्नहि गरुड़ अलोपी । कठिन बिछोह, जियहि किमि गोपी ?

सारस जोरी कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह ?
झुरि झुरि पींजर हौं भई, बिरह-काल मोहि दीन्ह ॥

पिउ-बियोगि अस बाउर जीऊ । पपिहा नित बोलै 'पीउ पीऊ' ॥
अधिक काम दाधै सो रामा । हरि लेइ सुवा गएउ पिउ नामा ॥
बिरह काल तस लाग न डोली । रकत पसीज, भीजि गइ चोली ॥
सूखा हिया, हार भा भारी । हरे हरे प्रान तजहिं सब नारी ॥
खन एक आव पेट महँ साँसा । खनहिं जाइ जिउ होउ निरासा ॥
पवन डोलावहिं, सींचहि चोला । पहर एक समुझहिं मुख-बोला ॥
प्रान पयान होत को राखा ? को सुनाव पीतम कै भाखा ?

आहि जो मारै बिरह कै, आगि उठै तेहि लागि ।
हँस जो रहा सरीर महँ, पाँख जरा, गा भागि ॥

पाट-महादेइ ! हिये न हारू । समुझि जीउ चित चेतु सँभारू ॥
भौंर कँवल सँग होइ मेरावा । सँवरि नेह मालति पहँ आवा ॥
पपिहैं स्वाती सौं जस प्रीति । टेकु पियासा, बाँधु मन थीती ॥
धरतिहि जैस गगन सौं नेहा । पलटि आव बरषा ऋतु मेहा ॥
पुनि बसन्त ऋतु आव नवेली । सो रस, सो मधुकर, सो बेली ॥
जिनि अस जीव करिस, तू बारी । यह तरिवर पुनि उठिहि सँवारी ॥
दिन दस बिनु जल सूखि बिधंसा । पुनि सोइ सरवर, सोई हंसा ॥

मिलहि जो बिछुरे साजन, अंकम भेंटि गहंत ।
तपनि मृगसिरा जे सहैं, ते अद्रा पलुहंत ॥

चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा । साजा बिरह दंद दल बाजा ॥
धूम, साम, धौरे घन धाए । सेत धजा बग-पाँति देखाए ॥

खड़ग-बीजु चमकै चहुँ ओरा । बुंद-बान बरसहिं घन घोरा ॥
ओनई घटा आइ चहुँ फेरी । कंत ! उबारु मदन हौं घेरी ॥
दादुर मोर कोकिला, पीऊ । गिरै बीजु, घट रहै न जीऊ ॥
पुष्य नखत सिर ऊपर आवा । हौं बिनु नाह, मँदिर को छावा ?
अद्रा लागि लागि भुइँ लेई । मोहिं बिनु पिउ को आदर देई ?

जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौ ओ गर्व ।
कंत पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्व ॥
पिउ सौं कहेहु सँदेसड़ा, हे भौंरा ! हे काग !
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहि क धुवाँ हम लाग ॥

पूस जाड़ थर थर तन काँपा । सुरुज जाइ लंका-दिसि चाँपा ॥
बिरह बाढ़, दारुन भा सीऊ । कँपि कँपि मरौं, लेइ हरि जीऊ ॥
कंत कहाँ, लागौं ओहि हियरे । पंथ अपार, सूझ नहिं नियरे ॥
सौंर सपेती आवै जूड़ी । जानहु सेज हिवंचल बूड़ी ॥
चकई निसि बिछुरै, दिन मिला । हौं दिन राति बिरह कोकिला ॥
रैनि अकेलि साथ नहिं सखी । कैसे जिये बिछोही पखी ॥
बिरह सचान भएउ तन जाड़ा । जियत खाइ औ मुए न छाँड़ा ॥

रकत ढुरा माँसू गरा, हाड़ भएउ सब संख ।
धनि सारस होइ ररि मुई, पीउ समेटहि पंख ॥
यह तन जारौं छार कै, कहौं कि 'पवन ! उड़ाव' ।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहँ पाव ॥

चैत बसन्ता होइ धमारी । मोहिं लेखे संसार उजारी ॥
पंचम बिरह पंच सर मारै । रकत रोइ सगरौं बन ढारै ॥
बूड़ि उठे सब तरिवर-पाता । भीजि मजीठ, टेसु बन राता ॥
बौरे आम फरै अब लागे । अबहुँ आउ घर, कंत सभागे !
सहस भाव फूलीं बनसपती । मधुकर घूमहिं सँवरि मालती ॥

मोकहँ फूल भए सब काँटे । दिस्टि परत जस लागहिं चाँटे ॥
फरि जोबन भए नारँग साखा । सुआ-बिरह अब जाइ न राखा ॥
घिरिनि परेवा होइ, पिउ ! आउ बेगि, परु टूटि ।
नारि पराए हाथ है तोहि बिनु पाव न छूटि ॥

भा बैसाख तपनि अति लागी । चोआ चीर चँदन भा आगी ॥
सूरुज जरत हिमंचल ताका । बिरह-बजागि सौंह रथ हाँका ॥
जरत बजागिनि करु, पिउ! छाहाँ । आइ बुझाउ, अँगारन्ह माहाँ ॥
तोहि दरसन होइ सीतल नारी । आइ आगि तें करु फुलवारी ॥
लागिउँ जरैं, जरैं जस भारू । फिरि फिरि भूँजेसि, तजिउँ न बारू ॥
सरवर-हिया घाट निति जाई । टूक टूक होइ कै बिहराई ॥
बिहरत हिया करहु, पिउ टेका । दीठि-दवँगरा मेरवहु एका ॥
कँवल जो बिगसा मानसर बिनु जल गएउ सुखाई ।
अबहुँ बेलि फिरि पलुहै जौ पीउ सींचै आइ ॥

## नागमती-संदेश-खण्ड

फिरि फिरि रोव,कोइ नहिं डोला । आधी रात बिहंगम बोला ॥
"तू फिरि फिरि दाहै सब पाँखी । केहि दुख रैनि न लावहि आँखी"?
नागमती कारन कै रोई । का सोवै जो कंत-बिछोई ॥
मनचित हुँते न उतरै मोरे । नैन क जल चुकि रहा न मोरे ॥
कोइ न जाइ ओहि सिंघलदीपा । जेहि सेवाति कहँ नैना सीपा ॥
जोगी होइ निसरा सो नाहू । तब हुँत कहा सँदेस न काहू ॥
निति पूछौं सब जोगी जंगम । कोइ न कहै निज बात बिहंगम !
चारिउ चक्र उजार भए, कोइ न सँदेसा टेक ।
कहौं बिरह दुख आन, बैठि सुनहु दंड एक ॥

तासों दुख कहिए सो बीरा । जेहि सुनि कै लागै पर पीरा ॥
को होइ भिउँ अँगवै पर दाहा । को सिंघल पहुँचावै चाहा ?

जहँवा कंत गए होइ जोगी । हौं किंगरी भइ झूरि बियोगी ।।
वै सिंगी पूरी, गुरु भेंटा । हौं भइ भसम, न आइ समेटा ।।
कथा जो कहै आइ ओहि केरी । पाँवरि होउँ, जनम भरि चेरी ।।
ओहि के गुन सँवरत भइ माला । अबहुँ न बहुरा उड़िगा छाला ।।
बिरह गुरू खप्पर कै हीया । पवन अधार रहै सो जीया ।।

हाड़ भए सब किंगरी, नसैं भईं सब ताँति ।
रोवँ रोवँ तें धुनि उठै, कहौं बिथा केहि भाँति ।।

पदमावति सौं कहेहु, बिहंगम । कंत लोभाइ रही करि संगम ।।
तू घर घरनि भइ पिउ-हरता । मोहि तन दीन्हेंसि जप औ बरता ।।
रावण कनक सो तोकहँ भएऊ । रावण लंक मोहि कै गएऊ ।।
तोहि चैन सुख मिलै सरीरा । मो कहँ हिये दुन्द दुख पीरा ।।
हमहूँ बियाही सँग ओहि पीऊ । आपुहि पाइ जानु पर जीऊ ।।
अबहुँ मया कर-करु, जिउ फेरा । मोहिं जियाउ कंत देइ मेरा ।।
मोहिं भोग सौं काज न, बारी । सौंह दीठि कै चाहनहारी ।।

सवति न होसि तू बैरिनि, मोर कंत जेहि हाथ ।
आनि मिलाव एक बेर, तोर पाँय मोर माथ ।।

लेइ सो सँदेस बिहंगम चला । उठी आगि सगरौं सिंघला ।।
बिरह-बजागि बीच को ठेघा ? धूम सो उठा साम भए मेघा ।।
भरि गा गगन लूक अस छूटे । होइ सब नखत आइ भुइँ टूटे ।।
जहँ जहँ भूमि जरी भा रेहू । बिरह के दाध भई जनु खेहू ।।
राहु, केतु, जब लंका जरी । चिनगी उड़ी चाँद महँ परी ।।
जाइ बिहंगम समुद डफारा । उरे मच्छ, पानी भा खारा ।।
दाधे बन बीहड़, जल सीपा । जाइ निअर भा सिंघलदीपा ।।

समुद तीर एक तरिवर जाइ बैठ तेहि रूख ।
जौं लगि कहा सँदेस नहिं, नहिं पियास, नहिं भूख ।।

## राजा-बादशाह-युद्ध-खण्ड

इहाँ राज अस सेन बनाई । उहाँ साह कै भई अवाई ॥
अगिले दौरे आगे आए । पछिले पाछ कोस दस छाए ॥
साह आइ चितउर गढ़ बाजा । हस्ती सहस बीस संग साजा ॥
ओनइ आए दूनौ दल साजे । हिन्दू तुरक दुवौ रन गाजे ॥
दुवौ समुद दधि उदधि अपारा । दूनौ मेरु खिखिंद पहारा ॥
कोपि जुझारु दुवौ दिसि मेले । औ हस्ती हस्ती सहुँ पेले ॥
हस्ती सहुँ हस्ती हठि गार्जहिं । जनु परबत परबत सौं बार्जहिं ॥
गरू गयंद न टारे टरहीं । टूटहिं दाँत, माथ गिर परहीं ॥
परबत आइ जो परहिं तराहीं । दर महँ चाँपि खेह मिलि जाहीं ॥

गगन रुहिर जस बरसै धरतीं बहै मिलाइ ।
सिर धर टूटति बिलाहिं तस पानी पंक बिलाइ ॥

बार्जहिं खड़ग उठै दर आगी । भुइँ जरि चहै सरग कहँ लागी ॥
चमकहिं बीजु होइ उजियारा । जेहि सिर परै होई दुइ फारा ॥
मेघ जो हस्ति हस्ति सहुँ गार्जहिं । बीजु जो खड़ग खड़ग सौं बार्जहिं ॥
झपटहिं कोपि, परहिं तरवारी । औ गोला ओला जस भारी ॥
जूझे वीर कहौं कहँ ताईं । लेइ अछरी कैलास सिधाईं ॥
भा संग्राम न भा अस काऊ । लोहे दुहुँ दिसि भए अगाऊ ॥
सीस कंध कटि कटि भुइँ परे । रुहिर सलिल होइ सायर भरे ॥

काहू साथ न तन गा, सकति मुए सब पोखि ।
ओछ पूर तेहि जानब, जो थिर आवति जोखि ॥

चाँद न टरै सूर सौं कोपा । दूसर छत्र सौंह कै रोपा ॥
सुना साह अस भएउ समूहा । पेल सब हस्तिन्ह के जूहा ॥
आजु चाँद तोर करौं निपातू । रहे न जग महँ दूसर छातू ॥
सहस करा होइ किरिन पसारा । छेंका चाँद जहाँ लगि तारा ॥

कटक असूझ अलाउदिं-साही । आबत कोइ न सँभारे ताही ॥
उदधि-समुद जस लहरैं देखी । नयन देखि, सुख जाइ न लेखी ॥
लाख जाहिं आवहिं दुइ लाखा । फरै झरै उपनै नव साखा ॥

लाग कटक चारिहु दिसि, गढ़हि परा अगदाहु ।
सुरुज गहन भा चहै, चाँदनि भा जस राहु ॥

चारि पहर दिन जूझ भा, गढ़ न टूट तस बाँक ।
गरुअ होत पै आवै दिन दिन नाकहि नाक ॥

आठ बरिस गढ़ छेंका रहा । धनि सुलतान, कि राजा महा ।
आइ साह अँबराउ जो लाए । फरे झरे पै गढ़ नहिं पाए ॥
जौ तोरों तौ जौहर होई । पदमिनि हाथ चढ़ै नहिं सोई ॥
एहि बिधि ढील दीन्ह, तब ताहीं । दिल्ली त अरदासैं आईं ॥
पछिउँ हरेव दीन्हि जो पीठी । सो अब चढ़ा सौंह कै दीठि ॥
जिन्ह भुइँ माथ, गगन तेइ लागा । थाने उठे, आव सब भागा ।
उहाँ साह चितउरगढ़ छावा । इहाँ देस अब होइ परावा ॥

जिन्ह जिन्ह पंथ न तृन परत बाढ़े बेर बबूर ।
निसि अँधियारी जाइ तब बेगि उठै जौ सूर ॥

# सूरदास

## जीवन-परिचय

जन्म सं. १५४० रुणकता में　　　　　गोलोकवास सं. १६२० पारसोली में

महात्मा सूरदास कृष्ण-भक्ति शाखा के प्रतिनिधि एवं सर्वश्रेष्ठ महाकवि थे। इनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में मतभेद है। रुणकता (रेणुका क्षेत्र) अथवा सिहीं नामक ग्राम में इनका जन्म माना गया है। ये मथुरा और आगरा के मध्य में गऊघाट नामक स्थान पर रहा करते और भगवद्-भक्ति के गीत गाया करते थे। इनके अन्धे होने के सम्बन्ध में भी बहुत से मत हैं। चाहे ये किसी रोग से अन्धे हुए हों अथवा अपने हाथों अपनी आँखें निकाल ली हों, कुछ भी हो, यह तो निश्चित है कि यह जन्मान्ध नहीं थे।

एक बार गऊघाट पर महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी महाराज ने इनके पद सुन कर बहुत प्रसन्नता प्रकट की और इन्हें श्रीनाथ जी के मंदिर में लाकर कीर्त्तन का मुखिया बना दिया। ये तभी से भगवान् कृष्ण की भक्ति में तन्मय होकर नित्य नये पद बना कर अपने प्रभु को रिझाने लगे। इन्हें 'अष्टछाप' के आठ कवियों में प्रधान स्थान दिया गया। १ 'सूरसागर', २ 'साहित्य-लहरी', तथा ३ 'सूरसारावली' इनके बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। सूरसागर में श्रीमद्भागवत का हिन्दी गीतों में स्वतंत्र भावानुवाद किया गया है। इस अनुवाद के लिए वल्लभाचार्य जी ने आदेश दिया था। पहले नौ स्कन्धों का संक्षिप्त चलता-सा वर्णन-मात्र कर दिया है। किन्तु, दशम स्कन्ध का बड़ा विस्तृत वर्णन है। उसमें भगवान् कृष्ण की बाल-लीला, रूपमाधुरी, प्रणय, विरह-वर्णन, विनय, शृंगार, गोपी-उद्धव-संवाद अथवा भ्रमरगीत बड़े विस्तृत रूप से कहे गये हैं; क्योंकि यह मुक्तक गीत-काव्य है अतः इसमें एक ही भाव के अनेकों पद बन गये हैं।

सूरदास वस्तुतः वत्सल रस की मूर्त्ति ही हैं। इन्होंने बालकृष्ण का बड़ा ही स्वाभाविक सरस सुन्दर चित्र चित्रित किया है इसलिए 'सूर' का दूसरा नाम 'वत्सलरस' कहा गया है। वत्सल रस ही क्यों विरह, रूपमाधुरी, गोपी-उद्धव संवाद आदि अन्य विषयों में भी सूरदास अपने उपमान आप ही हैं। भाषा की कोमलता का तो कहना ही क्या ? एक तो यूँ ही ब्रजभाषा संस्कृत के पश्चात् सर्वाधिक कोमल है और फिर वह सूर जैसे महापुरुष की वाणी से निकल कर सुगन्धित और मृदुलता से युक्त सुवर्ण बन गई है।

जैसी तन्मयता, सरसता और निश्चल सात्त्विक भक्ति सूर और तुलसी में पाई जाती है वैसी अन्य किसी कवि में नहीं। वास्तव में तुलसी और सूर हिन्दी-साहित्याकाश के सूर्य और चन्द्र हैं। इन महात्मा की प्रशंसा में कहा गया निम्न पद——

"किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद लग्यो, बेध्यो सकल शरीर॥"

अक्षरशः सत्य है।

## सार और समीक्षा

सूरदास के ये पद सूरसागर से संकलित किये गये हैं। इन पदों में सूर-साहित्य का सम्पूर्ण सौंदर्य सिमटा हुआ है। सर्वप्रथम विनय के पद दिये गये है। सूर अपने उद्धार के लिए प्रभु से अनेक प्रकार से प्रार्थना करते हैं। कभी वे कहते हैं कि मैं सांसारिक झंझटों के बहुतेरे नाच नाच चुका अब तो मुझे इन झंझटों से छुड़ा दीजिये। कभी वे अपने आपको 'मो सम कौन कुटिल खल कामी' कहकर तथा प्रभु को सबसे बड़ा पतित-पावन बताकर अपने उद्धार के लिए 'प्रार्थना' करते हैं। बाल-लीला के पदों में पालने में झूलते हुए और फिर घुटनों के बल आँगन में रेंगते हुए शिशु श्रीकृष्ण की झांकी दिखाकर कवि ने उनकी माखनचोरी आदि लीलाओं का बड़ा हृदयहारी वर्णन किया है। रूपमाधुरी की एक झलक दिखाकर, वंशी की विश्व-विमोहकता का चित्र भी

बड़ी सजीवता से साथ अंकित किया गया है। 'भ्रमर-गीत' या 'गोपी-उद्धव-संवाद' में गोपियों की सरल स्वाभाविक हृदयस्पर्शी उक्तियों को पढ़कर तो पाठक तन्मय ही हो जाता है। उद्धव के निर्गुण ब्रह्म की उपासना संबंधी युक्तियों एवं उक्तियों को वे "निर्गुण कौन देस कौ बासी" आदि पदों में बड़ी ही सरलता से खंडित कर देती हैं। इन्हीं पदों में उनकी विरह-व्यथा भी मार्मिक रूप में अभिव्यक्त हुई है। दृष्टकूट के पदों में सूर ने अनायास समझ में न आने वाले जटिल पदों की रचना की है। "कहत किन परदेसी की बात" एक ऐसा ही दृष्टकूट है।

सूरदास व्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि कवि हैं। इनके जैसी सरस, सुन्दर, स्वाभाविक और चलती हुई भाषा उनके सिवाय तुलसीदास आदि एक-दो कवियों में ही मिल सकती है। भाषा की स्वाभाविक प्रवाहमयता के साथ भावों की तलस्पर्शिता भी सूर-साहित्य का दूसरा विशेष गुण है। सूर के चित्र इतने खरे उतरे हैं कि सहृदय उन्हें देखते-देखते उन्हीं का रूप हो जाता है। बाल-लीला, रूपमाधुरी और गोपियों की विरह-व्यथा के चित्रण में तो सूरदास अपने उपमान आप ही हैं। सूर-साहित्य की ये सब विशेषताएँ इन चुए हुए पदों से स्पष्ट हो जाती हैं।

## विनय

**चरन कमल बन्दौं हरिराई।**
**जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अन्धे को सब कछु दरसाई॥**
**बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।**
**सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बन्दौं तेहि पाई॥**

**अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल!**
**काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल॥**
**महामोह को नूपुर बाजत, निन्दा सब्द रसाल।**
**भरम भरचो मन भयो पखावज, चलत कुसंगति चाल॥**

तृष्णा नाद करत घट भीतर नाना विधि दै ताल ।
माया को कटि फेंटा बाँध्यो, लोभ-तिलक दिय भाल ।।
कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल ।
सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करौ नँदलाल ।।

अपुनपौ आपुन ही बिसरयो ।
जैसे स्वान काँच मन्दिर में, भ्रमि भ्रमि भूकि मरयो ।।
हरि-सौरभ मृगनाभि बसत हैं, द्रुम तृन सूंघि मरयो ।
ज्यों सुपने में रंक भूप भयो, तस करि अरि पकरयो ।।
ज्यों केहरि प्रतिबिम्ब देखि कै, आपुन कूप परयो ।
जैसे गज लखि फटकि सिला में, दसननि जाय अरयो ।।
मरकट मूठि छाँडि नहिं दीनीं, घर घर द्वार फिरयो ।
सूरदास नलिनी को सुबटा, कहि कौने जकरयो ।।

अब मैं जानी देह बुढ़ानी ।
सीस पाँव धर कह्यो न मानत, तनु की दसा सिरानी ।।
आन कहत आनै कहि आवत, नाक नैन बहैं पानी ।
मिटि गई चमक दमक अँग अँग की, दीठि की दुतिहु हिरानी ।।
नारी गारी बिन नहिं बोलै, पूत करै कलकानी ।
घर में आदर कादर कोसों, खीजत रैनि बिहानी ।।
नाहिं रही कछु सुधि तन मन की, भई है बात पुरानी ।
सूरदास अब होत बिगूचन, भजिलै सारँगपानी ।।

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, पुनि जहाज पै आवै ।
कमलनैन को छाँड़ि महातम, और देव को ध्यावै ।।
परम गंग को छाँड़ि पियासो, दुर्मति कूप खनावै ।।
जिन मधुकर अम्बुजरस चाख्यो, क्यों करील फल भावै ।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै ।।

छाँड़ि मन हरि-बिमुखन को संग।
जिनके संग कुमति नित उपजति, परत भजन में भंग॥
कहा होत पयपान कराये, बिष नहिं तजत भुजंग।
कागहि कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गंग॥
खर को कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषण अंग।
गज को कहा न्हवाये सरिता, धरै खेह पुनि छंग॥
पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतो करत निखंग।
सूरदास खल कारी कामरि, चढ़त न दूजो रंग॥

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो नोनहरामी॥
भरि भरि उदर विषय को धावौं जैसे सूकर ग्रामी।
हरिजन छाँड़ि हरिविमुखन की निसदिन करत गुलामी॥
पापी कौन बड़ो है मो तें सब पतितन में नामी।
'सूर' पतित को ठौर कहाँ है, सुनिये श्रीपति स्वामी॥

## बाल-लीला

जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोई कछु गावै॥
मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहे न बेगि सी आवै तोको कान्ह बुलावै॥
कबहुँ पलक हरि मूंदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि रहि करि करि सैन बतावै॥
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरे गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुरलभ सो नँदभामिनि पावै॥

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुन चलत रेनु तनु मंडित मुख दधि-लेप किये॥

चारु कपोल लोल लोचन, गोरोचन तिलक किये ।
लट लटकनि मनों मत्त मधुप गन मादक मदहि पिये ॥
कठुला कंठ बज्र केहरि-नख राजत रुचिर हिये ।
धन्य 'सूर' एकौ पल यह सुख, का सत कल्प किये ॥

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी ।
किती बार मोहि दूध पियत भइ यह अजहूँ है छोटी ॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वैहै लाँबी मोटी ।
काढ़त गुहत न्हवावत पोंछत नागिनि सी भुंइ लोटी ॥
काचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी ।
'सूर' स्याम चिरजिव दोउ भैया हरि हलधर की जोटी ॥

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो ।
मोसों कहत मोल को लीनो तोहि जसुमति कब जायो ॥
कहा कहौं एहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जातु ।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तातु ॥
गोरे नन्द जसोदा गोरी तुम कत स्याम सरीर ।
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर ॥
तू मोही को मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीझै ।
मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति सुनि सुनि रीझै ॥
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही को धूत ।
'सूर' स्याम मोहिं गोधन की सौं हौं माता तू पूत ॥

मैया ! मैं नाहीं दधि खायो ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो ॥
देखि तुही सींके पर भाजन ऊंचे धर लटकायो ।
तुही निरखि नान्हे कर अपने मैं कैसे करि पायो ॥
मुख दधि पोंछि कहत नँदनन्दन दोना पीठि दुरायो ।
डारि साँट मुसकाइ तबहिं गहि सुत को कंठ लगायो ॥

बाल बिनोद मोद मन मोह्यो भगति प्रताप देखायो।
'सूरदास' प्रभु जसुमति के सुख सिव विरंचि बौरायो॥

देखि री हरि के चंचल नैन।
खंजन मीन मृगज चपलाई नहिं पटतर एक सैन॥
राजिवदल, इन्दीवर, सतदल, कमल, कुसेसय जाति।
निसि मुद्रित, प्रातहिं वे विकसत, ये विकसत दिन राति॥
अरुन सेत सिति झलक प्रति को बरनै उपमाइ।
मनु सरसुति गंगा जमुना मिलि संगम कीन्हो आइ॥
अवलोकिन जलधार तेज अति तहाँ न मन ठहरात।
'सूर' स्याम लोचन अपार छवि उपमा सुनि सरमात॥

## मुरली-महिमा

जब मोहन मुरली अधर धरी।
गृह व्यवहार थके आरजपथ तजत न संक करी॥
पदरिपु पट अटक्यो आतुर ज्यों उलटि पलटि उबरी।
सिवसुत बाहन आय पुकारो मन चित बुद्धि हरी॥
दुरि गये कीर, कपोत, मधुप, पिक, सारँग सुधि बिसरी।
उड़पति, विद्रुम, बिम्ब खिसान्यो दामिनि अधिक डरी॥
निरखे स्याम पतंग-सुता तट आनँद उमंग भरी।
'सूरदास' प्रभु प्रीति परस्पर प्रेम प्रवाह परी॥

## भ्रमर-गीत

बिलग जनि मानहु ऊधो प्यारे।
वह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहिं ते कार॥
तुम कारे, सुफलकसुत कारे, कारे मधुप भँवारे।
तिनके संग अधिक छवि उपजत कमलनैन मनिआरे॥
मानहु नील माट तैं काढ़े लै जमुना जु पखारे।
ता गुन स्याम भई कालिन्दी 'सूर' स्याम गुन न्यारे॥

निर्गुन कौन देस को बासी ।
मधुकर ! हँसि समुझाय सौंह दै बूझति साँच न हाँसी ।।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी ।
कैसो बरन भेस है कैसो केहि रस में अभिलासी ।।
पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे ! कहैगो गाँसी ।
सुनत मौन ह्वै रह्यो ठग्यो सो 'सूर' सबै मति नासी ।।

उर में माखनचोर गड़े ।
अब कैसहुँ निकसत नहिं ऊधो तिरछे ह्वै जु अड़े ।।
जदपि अहीर जसोदानन्दन तदपि न जात छड़े ।
यहाँ बने जदुबंस महाकुल हमहिं न लगत बड़े ।।
को बसुदेव देवकी वै को, न जानें बूझैं ।
'सूर' स्याम सुन्दर बिनु देखे और न कोऊ सूझैं ।।

(दूर करहु बीना कर धरिबो ।
मोहे मृग नाहीं रथ हाँक्यो नाहिन होत चन्द को ढरिबो ।।
बीती जाहि पै सोई जानै कठिन है प्रेम पास को परिबो ।
जब तें बिछुरे कमलनयन सखि, रहत न नयन नीर को गरिबो ।।
सीतल चंद अगिनि सम लागत कहिये धरो कौन बिधि धरिबो ।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस बिनु सब झूठो जतनिनि को करिबो ।।)

ऊधो जाहु तुम्हें हम जाने ।
स्याम तुम्हें ह्यां नाहिं पठाये तुम हौ बीच भुलाने ।।
ब्रजबासिन सों जोग कहत हौ बातहु कहत न जाने ।
बड़ लागै न बिबेक तुम्हारो ऐसे नये अयाने ।।
हम सों कही लई सो सहि कै जिय गुनि लेहु अपाने ।
कहँ अबला कहँ दसा दिगम्बर सम्मुख करो पहिचाने ।।
साँच कहो तुमको अपनी सौं बूझति बात निदाने ।
'सूर' स्याम जब तुम्हें पठाये तब नेकहु मुसकाने ।।

तबते इन सबहिन सचु पायो ।
जब ते हरि सन्देस तिहारो सुनत तवाँरो आयो ।।
फूले ब्याल दुरे ते प्रगटे पवन पेट भरि खायो ।
फूले मिरगा चौंकि चखन ते हुते जो बन बिसरायो ।।
ऊंचे बैठि विहंग सभा विच कोकिल मंगल गायो ।
निकसि कन्दरा ते केहरि हू माथे पूंछ हिलायो ।।
गहवर ते गजराज निकसि कै अँग अँग गर्व जनायो ।
'सूर' बहुरिहौ कह राधा कै करिहौ बैरिन भायो ।।

ऊधो मन नाहीं दस बीस ।
एक हुतो सो गयो स्याम सँग को आराधै ईस ।।
भईं अति शिथिल सबै माधव बिनु, यथा देह बिनु सीस ।
स्वासा अटकि रहे आसा लगि जीवहिं कोटि बरीस ।।
तुम तो सखा स्याम सुन्दर के सकल जोग के ईस ।
'सूरदास' रसिक की बतियां पुरवौ मन जगदीस ।।

ऊधो, जाय बहुरि सुनि आवहु कहा कह्यो है नन्दकुमार ।
यह न होव उपदेस स्याम को कहत लगावन छार ।।
निर्गुन ज्योति कहाँ उन पाई सिखवत बारम्बार ?
कालिहहि करत हुते हमारे अंग अपने हाथ सिंगार !
व्याकुल भये गोपालहिं बिछुरे गयो गुन ज्ञान सँभार ।।
ताते ज्यों भावै त्यों बकत हौ नाहीं दोष तुम्हार ।
बिरह सहन को हम सिरजी हैं, पाहन हृदय हमार ।
'सूरदास' अन्तरगत मोहन जीवन प्रान अधार ।।

निस दिन बरसत नैन हमारे ।
सदा रहत पावस ऋतु हम पै जब तें स्याम सिधारे ।।
दृग अंजन लागत नहिं कबहूँ उर कपोल भये कारे ।
कंचुकि नहिं सूखत सुनु सजनी उर बिच बहत पनारे ।।

'सूरदास' प्रभु अम्बु बढ़यो है गोकुल लेहु गबारे ।
कहँ लौं कहौं स्याम धन सुन्दर विकल होत अति भारे ।।

मधुकर ! ये मन बिगरि परे ।
समुझत नाहिं ज्ञान गीता को हरि-मुसुकानि अरे ।।
बाल मुकुन्द - रूप - रस राचे तातें वक्र खरे ।
होय न सूधी स्वान पूंछि ज्यों कोटिक जतन करे ।।
हरि-पद-नलिन बिसारत नाहिं सीतल उर सँचरे ।
जोग गम्भीर है अन्धकूप तेहि देखत दूरि डरे ।।
हरि अनुराग सुहाग भाग भरे अमिय ते गरल गरे ।
'सूरदास' बस ऐसे हि रहिहैं कान्ह वियोग-भरे ।।

## दृष्टकूट

(कहत किन परदेसी की बात ।
मन्दिर अरध अवधि हरि बदि गये हरि अहार चलि जात ।।
ससि रिपु बरष, भानु रिपु जुग सम, हरि रिपु किये फिरै घात ।
मघ-पंचम लै गये स्यामधन तातें जिय अकुलात ।।
नखत, वेद, ग्रह जोरि अरध करि को बरजै हमें खात ।
'सूरदास' प्रभु तुमहिं मिलन को कर मीड़त पछितात ।।)

# तुलसीदास

## जीवन-परिचय

जन्म सं० १५५४ राजापुर में　　　साकेतवास सं० १६८० काशी में

हिन्दी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकवि गोस्वामी तुलसीदास के जन्म-स्थान, समय आदि के सम्बन्ध में अनेक मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वान् सं० १५८३ तो दूसरे १५८९ और अनेक समालोचक १५५४ में इनका जन्म स्वीकार करते हैं। मृत्यु तो इनकी निश्चित रूप में संवत् १६८० श्रावण कृष्णा तृतीया शनिवार को ही हुई थी, जैसा कि बाबा बेनीमाधवदास के 'गोसाईं-चरित' के निम्न दोहे से स्पष्ट है :—

संवत सोलह से असी, असी गंग के तीर।
श्रावण कृष्णा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥

तुलसीदास के अनन्य मित्र मदैनी गांव के ठाकुर टोडर के वंशज अब भी श्रावण कृष्णा तृतीया ही को गोस्वामीजी के नाम पर सीदा दिया करते हैं।

अतः गोस्वामीजी की पुण्य तिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी नहीं प्रत्युत श्रावण कृष्णा तृतीया शनिवार ही है। अब शेष रहा प्रश्न जन्म-संवत् का, सो बाबा बेनीमाधवदास-कृत 'गोसाईं-चरित' और बाबा रघुवर-दास-कृत 'तुलसी-चरित' में वर्णित संवत् १५५४ श्रावण शुक्ला सप्तमी ही प्रमाणित तिथि और संवत् है, जैसे कि निम्न दोहे से स्पष्ट है :—

पन्द्रह से चव्वन विषे तरणितनूजा-तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी धरयो शरीर॥

पर्याप्त ऊहापोह और आलोचना-प्रत्यालोचना करने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि गोस्वामीजी का जन्म अवश्य ही उक्त

संवत् और तिथि को ही हुआ था । क्योंकि केवल मात्र इसीलिए कि १५५४ में जन्म मान लेने पर गोस्वामीजी की आयु १२६ वर्ष हो जाती है, १५८३ या ८९ में जन्म मानना उचित नहीं । गोस्वामी जी जैसे वीतराग पवित्र आचरण वाले महापुरुष की इतनी आयु होना कोई बड़ी बात नहीं है ।

इसके अतिरिक्त इनका जन्म १५८९ मान लेने पर मीराबाई का इन्हें पत्र लिखना असंभव-सा जँचता है । किन्तु १५५४ में जन्म मान लेने पर यह घटना सर्वथा स्वाभाविक और सत्य सिद्ध होती है । अतः कह सकते हैं कि गोस्वामीजी के जन्म और मृत्यु की पूर्वोक्त तिथियाँ ही सर्वथा सत्य और प्रामाणिक हैं ।

गंडमूल नक्षत्रों में उत्पन्न होने के कारण माता-पिता ने इन्हें जन्मते ही त्याग दिया था । इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था । महात्मा नरहरिदास ने इनका पालन-पोषण किया । तत्पश्चात् यह काशी चले गये और २५-३० वर्ष तक सभी शास्त्रों का व्यापक अध्ययन किया । तदनन्तर ये गृहस्थ-आश्रम में प्रविष्ट हुए और अपनी पत्नी के प्रति इतने आसक्त रहने लगे कि एक बार उसके मायके चले जाने पर ये भी पीछे हो लिये । इस पर उसने ऐसे मार्मिक वाक्य कहे कि जिनके प्रभाव से गोस्वामीजी मायापाश को तोड़ अनन्य भगवद्भक्त हो गये ।

इस घटना के पश्चात् उन्होंने भारत के सभी तीर्थों की यात्रा की । तत्पश्चात् काशी के महान् पण्डित शेषसनातन से अन्यान्य शास्त्रों का अध्ययन किया । फिर अयोध्या तथा काशी में रह कर 'रामचरितमानस' की रचना की ।

गोस्वामीजी भक्तशिरोमणि महाकवि तो थे ही, साथ ही सब से बड़े सुधारक भी थे । उन्होंने शैवों और वैष्णवों का विरोध दूर किया, निर्गुण-पंथी कबीर आदि के द्वारा प्रचारित वेद-शास्त्रों की निन्दा और प्राचीन भारतीय संस्कृति के खंडनात्मक विषैले प्रभाव को अपनी अमृत-

मयी वाणी से दूर कर भारतीय जनता को फिर से वास्तविक धर्म का रूप दिखाया और वेद-शास्त्रों के प्रति श्रद्धा जागृत की। कृष्ण-भक्तों द्वारा प्रचारित विलासिता की बाढ़ को रोक कर कर्मयोग का प्रचार किया। इसके अतिरिक्त अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के द्वारा संस्कृत, अवधी तथा व्रज तीनों भाषाओं में प्रबन्ध, मुक्तक गीत, कवित्त, सवैये आदि सभी शैलियों में; भक्ति, वात्सल्य, करुण, वीर, शृंगार आदि सभी रसों और विषयों पर मनोहारिणी रचनाएँ लिख कर साहित्य और समाज की जो सेवा गोस्वामीजी ने की है, वह भारतीय साहित्य में चिरस्मरणीय रहेगी। गोस्वामीजी वस्तुतः हिन्दी-साहित्याकाश के सूर्य ही थे। उन्होंने लगभग २० पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें से निम्नलिखित अत्यन्त प्रसिद्ध हैं :—

१—रामचरितमानस । २—कवितावली । ३—गीतावली । ४—विनयपत्रिका । ५—कृष्ण-गीतावली । ६—दोहावली । ७—पार्वती-मंगल । ८—जानकी-मंगल ।

## सार और समीक्षा

गोस्वामीजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उन्होंने जीवन के विविध क्षेत्रों से भाव-सामग्री एकत्रित कर अपने काव्य-कुसुमस्तवक का निर्माण किया। रामचरितमानस व कवितावली में राम-कथा के प्रसंग में जीवन की विविध वृत्तियों के चलते-फिरते चित्र अंकित हुए हैं। 'मानस' के आरम्भ में प्रकटित सज्जनों के चरित्र की महत्ता का अध्ययन करते-करते मन में अपूर्व पावनता की सुरसरि-धारा बहने लगती है। विभिन्न पात्रों के चरित्रों की 'मानस' में सुन्दर अवतारणा हुई है। हृदयस्पर्शी मार्मिक स्थलों को पहिचानने की शक्ति तो गोस्वामीजी के समान अन्य किसी भी हिन्दी के कवि को प्राप्त नहीं हुई। दशरथ-कैकेयी-संवाद में वृद्ध नरेश की स्त्रैणता तथा क्रूर कैकेयी की कर्कशता मानों मूर्त्तिमती ही हो गई है। राम-सीता-संवाद में सीता की सरलता एवं पतिपरायणता का दृश्य देखते ही बनता है। भरतागमन के समय लक्ष्मण का क्रोध विश्व में प्रलय ढा देने को प्रस्तुत है। इसी समय राम

की गम्भीरता और भक्तवत्सलता भी दर्शनीय हो उठी है। 'मानस' के इन प्रसंगों में अवधी भाषा का साहित्यिक सौन्दर्य परमोत्कृष्ट रूप में प्रकट हुआ है। 'विनय-पत्रिका' के पदों में तुलसी की भक्ति-भावना का भण्डार भरा हुआ है। कवितावली में कवि की काव्य-कला अत्यन्त कलित एवं कमनीय रूप में प्रकट हुई है। भगवान् राम की बाल-लीला, केवट का विनय, हनुमान् की वीरता आदि के चित्र पढ़ने ही से सम्बन्ध रखते हैं। 'विनय-पत्रिका' के पदों में तुलसी की विनय-भावना व्यक्त हुई है। तुलसी-सतसई या दोहावली के दोहों में जीवनोपयोगी अनेक तत्त्वों का संकलन किया गया है। इस प्रकार इन कविताओं को पढ़कर यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि व्रज तथा अवधी दोनों भाषाओं पर दोहा, छप्पय, कवित्त, गीत तथा दोहा, चौपाई आदि सभी शैलियों पर; एवं शृंगार, वीर, करुण, रौद्र आदि सभी रसों पर गोस्वामीजी का समान अधिकार था। भाषा की सुगठितता, प्रभावशालिता और सुकुमारता के तो कहने ही क्या। भाषा की ऐसी समाहार-शक्ति अन्यत्र दुर्लभ है। वास्तव में तुलसी के 'मानस' में मज्जन कर सहृदय रसिक अनुपम रस के सागर में निमग्न हो जाता है, इसमें कुछ संदेह नहीं।

## सत्संगति

बिनु सतसंग विवेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सतसंगति मुद मंगलमूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥
शठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई॥
विधिवश सुजन कुसंगति परहीं। फणिमणिसम निज गुण अनुसरहीं॥
विधि हरि हर कवि कोविद बानी। कहत साधु-महिमा सकुचानी॥
सो मोसन कहि जात न कैसे। शाकवणिक मणिगुणगण जैसे॥

## संत और असंत

बंदौं संत समान चित, हित अनहित नहिं कोय।
अंजलिगत शुभ सुमन जिमि, सम सुगन्ध कर दोय॥

संत सरलचित जगत हित, जानि सुभाव सुनेहु ।
बालविनय सुनि करि कृपा, रामचरणरति देहु ॥

बहुरि बंदि खलगण सति भाए । जे बिन काज दाहिने बांए ॥
परहित हानि लाभ जिन केरे । उजरे हर्षविषाद बसेरे ॥
हरि-हर-यश-राकेश राहु-से । पर अकाज भट सहसबाहु-से ॥
जे परदोष लखहि सहसाखी । परहित घृत जिनके मन माखी ॥
तेज कृशानु रोष महिशेषा । अघ अवगुणधन धनिक धनेषा ॥
उदय केतुसम हित सबही के । कुम्भकरण सब सोवत नीके ॥
पर अकाज लगि तनु परिहरहीं । जिमि हिमउपल कृषीदल गरहीं ॥
बंदौं खल जस शेष सरोषा । सहसबदन बरणै परदोषा ॥
पुनि प्रणवौं पृथुराज समाना । पर अघ सुनैं सहस दश काना ॥
बहुरि शक्रसम बिनवौं तेही । सन्तत सुरा नीक हित जेही ॥
बचन वज्र जेहिं सदा पियारा । सहस नयन परदोष निहारा ॥

उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहिं खल रीति ।
जानि पाणियुग जोरि करि, बिनती करौं सप्रीति ॥

मैं आपनि दिशि कीन्ह निहोरा । तिन निज ओरन लाउब भोरा ॥
बायस पालिय अति अनुरागा । होइ निरामिष कबहुँ कि कागा ॥
बन्दौं सन्त असज्जन चरणा । दुखप्रद उभय बीच कछु बरणा ॥
बिछरत एक प्राण हरि लेहीं । मिलत एक दारुण दुख देहीं ॥
उपजहिं एक संग जल माहीं । जलज जौंक जिमि गुण बिलगाहीं ॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू । जनक एक जग जलधि अगाधू ॥
भल अनभल निज-निज करतूती । लहत सुयश अपलोक बिभूती ॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू । गरल अनल कलिमलसरि व्याधू ॥
गुण अवगुण जानत सब कोई । जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ॥

भले भलाई पै लहहिं, लहहिं निचाई नीच ।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच ॥

खल गह अगुण साधु गुणगाहा । उभय अपार उदधि अवगाहा ॥
तेहिते कछु गुण दोष बखाने । संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥
भलेउ पोच सब विधि उपजाए । गनि गुण दोष बेद बिलगाए ॥
कहहिं वेद इतिहास पुराना । विधि प्रपंच गुण अवगुण साना ॥
दुख सुख पाप पुण्य दिन राती । साधु असाधु सुजाति कुजाती ॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू । अमिय सजीवन माहुर मीचू ॥
माया ब्रह्म जीव जगदीशा । लक्षि अलक्षि रंक अवनीशा ॥
काशी नग सुरसरि क्रमनाशा । मरु मालव महिदेव गवाशा ॥
स्वर्ग नरक अनुराग बिरागा । निगमागम गुण दोष विभागा ॥

जड़ चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार ।
सन्त हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि बिकार ॥

सन्त असन्त भेद बिलगाई । प्रनतपाल मोहिं कहिय बुझाई ॥
सन्तन के लक्षण सुनु भ्राता । अगनित श्रुति पुरान विख्याता ॥
सन्त असन्तन्ह कै अस करनी । जिमि कुठार चन्दन आचरनी ॥
काटे परसु मलय सुनु भाई । निजगुन देह सुगन्ध बसाई ॥

तातें सुरसीसन्ह चढ़त, जगवल्लभ स्रीखंड ।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परसु बदन यह दंड ॥

सम प्रकाश तम पाख दुहूँ नाम भेद विधि कीन्ह ।
ससि पोषक सोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह ॥

विषय अलंपट सील गुनाकर । परदुख दुख सुख सुख देखे पर ॥
सम अभूत रिपु विमद विरागी । लोभामर्ष हर्ष भय त्यागी ॥
कोमल चित दीनन्ह पर दाया । मन वच क्रम मम भक्त अमाया ॥
सबहिं मानप्रद आपु अमानी । भरत प्रानसम मम ते प्रानी ॥
बिगतकाम मम नाम परायन । सांत विरक्त नीति मुदितायन ॥
बिगतकाम मम नाम परायन । सांत विरक्त नीति मुदितायन ॥
सीतलता सु सरलता मैत्री । द्विजपदप्रेम धर्म जनयित्री ॥

यह सब लक्षण बसहिं जासु उर । जानेहु तात संत संतत पुर ॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं । परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं ॥

निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पदकंज ।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुनमन्दिर सुखपुंज ॥

सुनहु असंतन केर सुभाऊ । भूलेहु संगति करिय न काऊ ॥
तिन्हकर संग सदा दुखपाई । जिमि कपिलहिं घालै हरहाई ॥
खलन्हहृदय अतिताप बिसेखी । जरहिं सदा पर संपति देखी ॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई । हर्षहिं मनहुँ परी निधि पाई ॥
काम क्रोध मद लोभ परायन । निर्दय कपटी कुटिल मलायन ॥
वैर अकारन सब काहू सों । जो करु हित अनहित ताहू सों ॥
झूठै लेना झूठै देना । झूठै भोजन झूठ चबेना ॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा । खाहिं महाअहि हृदय कठोरा ॥

परद्रोही परदाररत, परधन परअपवाद ।
ते नर पामर पापमय, देह धरे मनुजाद ॥

काहूकी जो सुनहिं बड़ाई । स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई ॥
जो काहूकै देखहिं विपती । सुखी होहिं मानहु जगनृपती ॥
स्वारथरत परिवार विरोधी । लम्पट काम लोभ अतिक्रोधी ॥
मातु पिता गुरु विप्र न मानहिं । आपु गए अरु घालहिं आनहिं ॥
करहिं मोहबस द्रोह परावा । सत्संगति हरिभक्ति न भावा ॥
अवगुनसिंधु मन्दमति कामी । वेदविदूषक परधन स्वामी ॥
विप्रद्रोह परद्रोह विसेखी । दंभ कपट जिय धरे सुवेखी ॥

ऐसे अधम मनुज खल, कृतयुग त्रेता नाहिं ।
द्वापर कछुक वृन्द बहु, होइहैं कलियुग माहिं ॥

## दशरथ-कैकेयी-संवाद

बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि ।
कारन मोहि सुनाउ, गजगामिनि निजकोप कर ॥

अनहित तोर प्रिये केहि कीन्हा । केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा ॥
कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू । कहु केहि नृपहि निकासउं देसू ॥
सकउं तोर अरि अमरउ मारी । काह कीट बपुरे नर नारी ॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू । मन तव आननचन्दचकोरू ॥
प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरे । परिजन प्रजा सकल बस तोरे ॥
जौं कछु कहउं कपट करि तोही । भामिनि राम सपथ सत मोही ॥
बिहँसि मांगु मन भावति बाता । भूषन सजहि मनोहर गाता ॥
घरी कुघरी समुझि जिय देखू । बगि प्रिया परिहरहि कुबेखू ॥

यह सुनि मनु गुनि सपथ बडि, बिहँसि उठी मतिमंद ।
भूषन सजित बिलोकि मृग, मनहुँ किरातिनि फंद ॥

पुनि कह राउ सुहृद जिय जानी । प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी ॥
भामिनि भयउ तोर मनभावा । घर घर नगर अनंद बधावा ॥
रार्मांह देउं कालि जुवराजू । सजहि सुलोचनि मंगल साजू ॥
दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू । जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू ॥
ऐसिउ पीर बिहँसि तेइ गोई । चोरनारि जिमि प्रगटि न रोई ॥
लखी न भूप कपट चतुराई । कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई ॥
ज़द्यपि नीतिनिपुन नरनाहू । नारिचरित-जलनिधि अवगाहू ॥
कपट सनेह बढ़ाइ बहोरी । बोली बिहंसि नयन मुंह मोरी ॥

मांगु मांगु पै कहहु पिय, कबहुं न देहु न लेहु ।
देन कहेहु बरदान दुइ, तेउ पावत संदेहु ॥

जानेउं मरम राउ हंसि कहई । तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई ॥
थाति राखि न मांगेहु काऊ । बिसरि गएउ मोहि भोर सुभाऊ ॥
झूठेहु हंमहि दोष जनि देहू । दुइ कै चारि मांगि किन लेहू ॥
रघुकुलरीति सदा चलि आई । प्राण जाहु बरु वचन न जाई ॥
नहिं असत्य सम पातकपुंजा । गिरिसम होहि कि कोटिक गुंजा ॥
सत्य मूल सब सुकृत सुहाए । वेद पुरान विदित मुनि गाए ॥

तेहि पर राम सपथ करि आई । सुकृत सनेह अवधि रघुराई ॥
बात दृढाइ कुमति हँसि बोली । कुमत बिहंग कुलह जनु खोली ॥

भूप मनोरथ सुभग बन, सुख सुबिहंग समाजु ।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति, बचन भयंकर बाजु ॥

सुनहु प्रान प्रिय भावत जीका । देहु एक बर भरतहि टीका ॥
मागउं दूसर बर कर जोरी । पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ॥
तापसबेष बिसेषि उदासी । चौदह बरसि राम बनवासी ॥
सुनि मृदु बचन भूप हिय सोकू । ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू ॥
गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा । जनु सचान बन झपटेउ लावा ॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू । दामिनि हनेउ मनहुं तरु तालू ॥
माथे हाथ मूंदि दोउ लोचन । तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥
मोर मनोरथ-सुरतरु फूला । फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ॥
अवध उजारि कीन्हि कैकेयी । दीन्हेसि अचल बिपति कै नेई ॥

कवने अवसर का भयउ, गयउं नारि बिश्वास ।
जोगसिद्धि फल समय जिमि, जतिहि अविद्या नास ॥

एहि विधि राउ मनहिं मन झांखा । देखि कुभांति कुमति मनु मांखा ॥
भरत कि राउर पूत न दोही । आनेहु मोल बेसाहि कि मोही ॥
जो सुनि सर सम लागु तुम्हारे । काहे न बोलहु बचनु संभारे ॥
देहु उतर अरु कहहु कि नाहीं । सत्यसंध तुम रघुकुल माहीं ॥
देन कहेहु अब जनि बरु देहू । तजहु सत्य जग अपजस लेहू ॥
सत्य सराहि कहेहु बरु देना । जानेहु लेइहि मांगि चबेना ॥
सिवि दधीचि बलि जो कछु भाखा । तनु धनु तजेउ बचनपन राखा ॥
अति कटु बचन कहति कैकेई । मानहुं लोन जरे पुर देई ॥

धरम धुरंधर धीर धरि, नयन उघारे राय ।
सिर धुनि लीन्हि उसास असि, मारेसि मोहि कुठाय ॥

आगे दीखि जरति रिसि भारी । मनहुँ रोष तरवारि उघारी ॥
मूठ कुबुद्धि धार निठुराई । धरी कूबरी सान बनाई ॥
लखी महीप कराल कठोरा । सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा ॥
बोलेउ राउ कठिन कर छाती । बानी सविनय तासु सोहाती ॥
प्रिया बचन कस कहसि कुभांति । भीरु प्रतीत प्रीति करि हांती ॥
मोरे भरत राम दुइ आंखी । सत्य कहउं करि संकर साखी ॥
अवसि दूत मैं पठउब प्राता । अइहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता ॥
सुदिन सोधि सब साजु सजाई । देउं भरत कहुं राजु बनाई ॥

लोभु न रामहिं राजु कर, बहुत भरत पर प्रीति ।
मैं बड़ छोट बिचारि जिय, करत रहेउँ नृपनीति ॥

राम सपथ सत कहउं सुभाऊ । राममातु कछु कहेउ न काऊ ॥
मैं सब कीन्ह तोहि बिनु पूछे । तेहि तें परेउ मनोरथ छूछे ॥
रिस परिहरु अब मंगल साजू । कछु दिन गए भरत जुवराजू ॥
एकहि बात मोहि दुख लागा । बर दूसर असमंजस मांगा ॥
अजहूं हृदय जरत तेहि आंचा । रिस परिहास कि सांचेहु सांचा ॥
कहु तजि रोषु रामअपराधू । सब कोउ कहइ राम सुठि साधू ॥
तुहूं सराहसि करसि सनेहू । अब सुनि मोहि भयउ सन्देहू ॥
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला । सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला ॥

प्रिया हास रिस परिहरहि, मांगु बिचारि बिबेकु ।
जेहि देखउं अब नयन भरि, भरत राज अभिषेकु ॥

जिअइ मीन बरु बारि बिहीना । मनि बिनु फनिक जिअइ दुख दीना ॥
कहउं सुभाउ न छल मन माहीं । जीवन मोर राम बिनु नाहीं ॥
समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना । जीवन राम दरस आधीना ॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई । मनहुं अनल आहुति घृत परई ॥
कहइ करहु किन कोटि उपाया । इहां न लागिहि राउरि माया ॥
देहु कि लेहु अजस करि नाहीं । मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं ॥

राम साधु तुम्ह साधु सयाने । राम मातु भलि सब पहिचाने ॥
जस कोसिला मोर भल ताका । तस फल उन्हहिं देउं करि साका ॥
होत प्रात मुनि वेष धरि, जौं न राम बन जाहिं ।
मोर मरन राउर अजसु, नृप समुझिय मन माहिं ॥
अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी । मानहुं रोष-तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई । भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा । भंवर कूबरी बचन प्रचारा ॥
ढाहत भूपरूप तरुमूला । चली बिपतिबारिधि अनुकूला ॥
लखी नरेस बात सब सांची । तियमिस मीच सीस पर नांची ॥
गहि पद विनय कीन्हि बैठारी । जनि दिनकरकुल होसि कुठारी ॥
मांगु माथ अबहीं देउं तोही । राम बिरह जनि मारसि मोही ॥
राखु राम कहं जेहि-तेहि भांती । नांहि त जरहि जनम-भर छाती ॥
देखी ब्याधि असाधि नृप, परेउ धरनि धुनि माथ ।
कहत परम आरत वचन, राम राम रघुनाथ ॥
व्याकुल राउ सिथिल सब गाता । करिनि कलपतरु मनहुं निपाता ॥
कंठ सूख मुख आव न बानी । जनु पाठीन दीन बिनु पानी ॥
पुनि कह कटु कठोर कैकेई । मनहुं धाय महुं माहुर देई ॥
जौं अंतहु अस करतब रहेऊ । मांगु-मांगु तुम्ह केहि बल कहेऊ ॥
दुइ कि होइ इक समय भुआला । हसब ठठाइ फुलाउब गाला ॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई । होइ कि षेम कुसल रौं ताई ॥
छाडहु बचन कि धीरज धरहु । जनि अबला जिमि करुना करहु ॥
तनु तिय तनय धाम धनु धरनी । सत्यसंध कहं तृन सम बरनी ॥
मरम बचन सुनि राउ कह, काहु कछु दोष न तोर ।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि, काल कहावत मोर ॥
चहत न भरत भूप तिहि भोरे । बिधिबस कुमति बसी जिय तोरे ॥
सो सब मोर पापपरिनामू । भयउ कुठाहर जहि बिधि बामू ॥

सुवस बसहि फिरि अवध सुहाई । सब गुन धाम राम प्रभुताई ।।
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई । होइहि तिहुं पुर राम बड़ाई ।।
तोर कलंक मोर पछिताऊ । मुयहु न मिटिहि न जाइहि काऊ ।।
अब तोहि नीक लाग करु सोई । लोचन ओट बैठु मुंह गोई ।।
जब लगि जियउं कहऊं कर जोरी । तबलगि जनि कछु कहसि बहोरी ।।
फिर पछतैहसि अन्त अभागी । मारसि गाइ नहारुहि लागी ।।

परेउ रोउ कहि कोटि बिधि, काहे करसि निदानु ।
कपट सयानि न कहति कछु, जागति मनहुं मसानु ।।

राम राम रट बिकल भुआलू । जनु बिनु पंख भुअंग बेहालू ।।
हृदय मनाव भोरु जनि होई । रामहिं जाइ कहइ जनि कोई ।।
उदय करहु जनि रबि रघुकुलगुर । अबध बिलोकि सूल होइहि उर ।।
भूप प्रीति कै कह कठिनाई । उभय अवधि बिधि रची बनाई ।।
बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा । बीना बेनु संख धुनि द्वारा ।।
पठहिं भाट गुन गावहिं गायक । सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक ।।
मंगल सकल सुहाहिं न कैसे । सहगामिनिहिं बिभूषन जैसे ।।
तेहि निसि नींद परी नहिं काहू । रामदरस लालसा उछाहू ।।

## भरतागमन के समय लक्ष्मण का क्रोध और श्रीराम का उन्हें समझाना

लषन लखउ प्रभु हृदय खँभारू । कहत समय सम नीति बिचारू ।।
बिनु पूछे कछु कहउं गोसाईं । सेवक समय न ढीठ ढिठाईं ।।
तुम्ह सर्वज्ञ सिरोमणि स्वामी । आपनि समुझि कहउं अनुगामी ।।

नाथ सुहृद सुठि सरल चित, सील सनेह निधान ।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय, जानिय आपु समान ।।

विषयी जीव पाइ प्रभुताई । मूढ़ मोहबस होंहिं जनाई ।।
भरत नीतिरत साधु सुजाना । प्रभुपदप्रेम सकल जग जाना ।।

तेऊ आजु राजपदु पाई । चले धरम मरयाद मेटाई ॥
कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी । जानि राम बनबास एकाकी ॥
करि कुमंत्र मन साजि समाजू । आए करइ अकंटक राजू ॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई । आए दल बटोरि दोउ भाई ॥
जौं जिय होति न कपट कुचाली । केहि सुहाति रथ बाजि गजाली ॥
भरतहि दोष देइ को जाए । जग बौराइ राजपद पाए ॥

ससि गुरुतियगामी नहुष, चढ़ेउ भूमिसुर जान ।
लोक बेद तें बिमुख भा, अधम न बेन समान ॥

सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू । केहि न राजमद दीन्ह कलंकू ॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ । रिपु रिन रंच न राखब काऊ ॥
एक कीन्ह नहिं भरत भलाई । निदरे राम जानि असहाई ॥
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेखी । समर सरोष राममुख पेखी ॥
इतना कहत नीतिरस भूला । रनरसबिटप पुलक मिस फूला ॥
प्रभुपद बंदि सीस रज राखी । बोले सत्य सहज बल भाखी ॥
अनुचित नाथ न मानव मोरा । भरत हमहि उपचार न थोरा ॥
कहँ लगि सहिय रहिअ मन मारे । नाथ साथ धनु हाथ हमारें ॥

छत्रि जाति रघुकुल जनम, राम अनुज जग जान ।
लातहुं मारे चढ़िय सिर, नीच को धूरि समान ॥

उठि कर जोरि रजायसु मांगा । मनहुं बीररस सोवत जागा ॥
बांधि जटा सिर कसि करि माथा । साजि सरासन सायक हाथा ॥
आजु रामसेवक जसु लेऊं । भरतहिं समय सिखावन देऊं ॥
राम निरादर कर फल पाई । सोवहु समरसेज दोउ भाई ॥
आइ बना भल सकल समाजू । प्रगट करउं रिस पाछिल आजू ॥
जिमि करिनिकर दलइ मृगराजू । लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥
तैसेहि भरतहि सेनसमेता । सानुज निदरि निपातउं खेता ॥
जौं सहाय कर संकर आई । तौं मारउं रन राम दोहाई ॥

अति सरोष भाषे लषन, लखि सुनि सपथ प्रमान ।
सभय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान ॥

जग भयमगन गगन भइ बानी । लषन बाहुबल बिपुल बखानी ॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा । को कहि सकइ को जाननिहारा ॥
अनुचित उचित काज कछु होऊं । समुझि करिअ भल कह सब कोऊ ॥
सहसा करि पाछै पछिताहीं । कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं ॥
सुनि सुरबचन लषन संकुचाने । राम सीय सादर सनमाने ॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई । सब तें कठिन राजपद भाई ॥
जों अँचवत मातहिं नृप तेई । नाहिं न साधु सभा जेहि सेई ॥
सुनहु लषन भल भरत सरीसा । बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥

भरतहि होइ न राजमद, बिधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुं कि कांजी सीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ ॥

तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई । गगन मगन मकु मेघहि मिलई ॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी । सहज छमा बरु छांड़इ छोनी ॥
मसकफूंक मकु मेरु उड़ाई । होइ न नृपमद भरतहिं भाई ॥
लषन तुम्हार सपथ पितु आना । सुचि सुबंधु नहिं भरतसमाना ॥
सगुन षीर अवगुन जल ताता । मिलइ रचइ परपंच विधाता ॥
भरत हंस रबिबंसतडागा । जनमि कीन्ह गुनदोषबिभागा ॥
गहि गुन पय तजि अवगुनबारी । निज जस जगत कीन्ह उजियारी ॥
कहत भरतगुनसीलसुभाऊ । प्रेमपयोधिमगन रघुराऊ ॥

सुनि रघुबर बानी बिबुध, देखि भरत पर हेतु ।
सकल सराहत राम सों, प्रभु को कृपानिकेतु ॥

जौं न होत जग जनम भरत को । सकल धरमधुरधरनिधरत को ॥
कबिकुलअगम भरतगुनगाथा । को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥
लषन राम सिय सुनि सुरबानी । अति सुख लहेउ न जाइ बखानी ॥

## विनय-पत्रिका के पद

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन, हरन भवभय दारुनं ।
नवकंज-लोचन, कंजमुख, करकंज, पदकंजारुनं ॥
कंदर्प अगनित-अमित छबि, नवनील नीरद सुन्दरं ।
पटपीत मानहुँ तड़ित रुचि सुचि नौमि जनक-सुतावरं ॥
भजु दीनबंधु दिनेस दानव-दैत्य-बंस-निकंदनं ।
रघुनंद आनँद कंद कोसलचन्द दसरथ-नन्दनं ॥
सिर मुकुट, कुण्डल तिलक चारु, उदारु अंग विभूषनं ।
आजानुभुज, सर-चाप-धर, संग्राम-जित-खरदूषनं ॥
इति वदति तुलसीदास संकर-सेष-मुनि-मन-रंजनं ।
मम हृदय-कंज निवास करु, कामादि-खल-दल-गंजनं ॥

सुन मन मूढ़ ! सिखावन मेरो ।
हरिपद-बिमुख लह्यो न काहु सुख, सठ यह समुझ सबेरो ॥
बिछुरे ससि, रबि मम नैननि तें, पावत दुख बहुतेरो ।
भ्रमत स्रमित निसि-दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरो ॥
जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता, तिहुँ पुर सुजस घनेरो ।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित, बहिबो ताहू केरो ॥
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति, स्रुति सन्देह निबेरो ।
तुलसिदास अब आस छाँड़ि कर, होहु राम कर चेरो ॥

केसव कहि न जाइ का कहिये ।
देखत तव रचना बिचित्र अति, समुझि मनहि मन रहिये ॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहि, तनु बिनु लिखा चितेरे ।
धोये मिटै न मरै भीति, दुख पाइय इहि तनु हेरे ॥
रविकर-नीर बसै अति दारुन, मकर रूप तेहि माहीं ।
बदन-हीन सों ग्रसे चराचर, पान करन जे जाहीं ॥

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबन्ध कोउ मानैं ।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानैं ।।

ऐसो को उदार जग माहीं ।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ।।
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी ।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ।।
जो सम्पति दससीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्हीं ।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच-सहित हरि दीन्हीं ।।
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो ।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो ।।

जो निज मन परिहरै विकारा ।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति दुख संसय सोक अपारा ।।
सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनिये, मन कीन्हें बरि आईं ।
त्यागन गहन उपेच्छनीय, अहि हाटक तृन की नाईं ।।
असन, बसन, पसु, बस्तु बिबिध बिधि, सब मनि महँ रह जैसे ।
सरग नरक चर अचर लोक बहु, बसत मध्य मन तैसे ।।
बिटप-मध्य पुतरिका, सूत महँ कंचुकि बिनहि बनाये ।
मन महँ तथा लीन नाना तनु प्रगटत अवसर पाये ।।
रघुपति-भक्ति-बारिछालितचित बिनु प्रयास ही सूझै ।
तुलसिदास कह चिद-बिलास जग बूझत बूझत बूझै ।।

## कवितावली रामायण

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे ।
अवलोकि हौं सोच-बिमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे धिक से ।।
'तुलसी' मनरंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक से ।
सजनि ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे ।।

तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन, कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं॥
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकैं कल बाल-बिनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, 'तुलसी' मन-मन्दिर में बिहरैं॥

पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि, मंजु बनी मनि माल हिये।
नवनील कलेवर पीत झगा झलकैं पुलकैं नृप गोद लिये॥
अरविंद सो आनन, रूप मरंद अनंदित लोचन-भृंग पिये।
मन मों न बस्यो अस बालक जौ 'तुलसी' जग में फल कौन जिये॥

कबहूं ससि मांगत आरि करैं, कबहूं प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूं करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूं रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, 'तुलसी' मन मन्दिर में बिहरैं॥

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दर, वेद, जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं॥
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टालत नाहीं॥

पुर तें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै॥
फिर बूझति हैं "चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै?"
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियां अति चारु चली जलच्वै॥

एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लों जल-थाह दिखाइहौं जू।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू॥
'तुलसी' अवलंब न और कछू, लरिका केहि भांति जिआइहौं जू।
बरु मारिय मोंहि, बिना पग धोये हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू॥

रावरे दोष न पायँन को, पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें बन-बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है॥

पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है ।
'तुलसी' सुनि केवट के बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है ।।

रावन सो राजरोग बाढ़त विराट उर,
दिन दिन बिकल सकल सुख-राँक सो ।
नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,
होत न बिसोक, ओत पावैं न मनाक सो ।।
राम की रजाय तें रसायनी समीर सूनु,
उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो ।
जातुधान बुट, पुटपाक लंक जातरूप,
रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो ।।

राम बिहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कवि-कोकिल हू की ।
नामहिं ते गज की, गनिका की, अजामिल की चलिगै चल-चूकी ।।
नाम-प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पांडु बधू की ।
ताको भलो अजहूँ 'तुलसी' जेहि प्रीति प्रतीति है आखर दू की ।।

भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितैहौं ।
मोको न लेनो न देनो कछू कलि ! भूलि न रावरि ओर चितैहौं ।।
जानि कै जोर करौ परिनाम, तुम्है पछितैहौ पै मैं न मितैहौं ।
ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि, हौं त्योंहीं तिहारे हिये न हितैहौं ।।

पिंगल जटा कलाप, माथे पै पुनीत आप,
पावक नैना, प्रताप भ्रू पर बरत हैं ।
लोचन बिसाल लाल, सोहैं बालचन्द्र भाल,
कंठ कालकूट, ब्याल भूषन धरत हैं ।।
सुन्दर दिगम्बर बिभूति गात, भांग खात,
रूरे सृंगी परे काल-कंटक हरत हैं ।
देत न अघात, रीझि जात पात आक ही के,
भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं ।।

# मीराबाई

## जीवन-परिचय

जन्म सं० १५५५ मृत्यु सं० १६२०

आपका जन्म सं० १५५५ मेड़ता में और मृत्यु सं० १६२० के लगभग द्वारका में हुई। सर्वश्रेष्ठ कृष्णभक्त स्त्री कवयित्री मीराबाई मेड़ता के राव रत्नसिंह की पुत्री व मेवाड़ के महाराणा सांगा के सुपुत्र भोजराज की पत्नी थीं। विवाह के सात वर्ष पश्चात् ही वे विधवा हो गईं। आरम्भ ही से वह भगवान् कृष्ण की अनन्य भक्त थीं। विधवा होने पर उनकी यह भक्ति पराकाष्ठा पर पहुंच गई। अब वे श्रीकृष्ण की पति रूप में उपासना करने लगीं। साधु-संगति, श्रीकृष्णलीला-चर्चा, पूजा-अर्चा को छोड़कर उन्हें दूसरा काम नहीं रह गया। इस पर इनका देवर विक्रमादित्य बहुत रुष्ट रहने लगा और विरोध करने लगा। यहां तक कि एक बार तो उसने विष-मिश्रित दूध भी पीने के लिए भेजा जिसे वे सहर्ष पी गईं किन्तु उस हलाहल विष का कुछ भी प्रभाव न हुआ। अन्त में रात-दिन के विरोध को न सहकर वे चित्तौड़ को छोड़कर वृन्दावन की यात्रा को चली गईं; इससे पूर्व उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास जी से निम्नलिखित पत्र लिखकर पूछा था कि ऐसी परिस्थिति में मेरा क्या कर्त्तव्य है—

स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषण दूषन हरन गोसाईं।
बारहिं बार प्रनाम करहुं, अब हरहु सोक समुदाईं॥

इस पर गोस्वामी जी ने विनयपत्रिका का यह पद लिखकर भेजा—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
सो नर तजिये कोटि बैरि सम यद्यपि परम सनेही॥

मीरा की भक्ति माधुर्य भाव से परिपूर्ण है। इनकी कविता की

**उत्कृष्टता को देखते हुए समालोचक जगत् ने उन्हें हिन्दी कवियों में बहुत उच्च स्थान दिया है। कृष्ण-भक्त स्त्री कवयित्रियों में तो उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ है। वे अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की उपासना प्रियतम या पति के रूप में करती थीं।**

## सार और समीक्षा

मीरा की कविताओं में हमें उस काल में प्रवाहित भक्ति की त्रिधारा के दर्शन होते हैं। वे साकार कृष्ण के गुण गाती हैं।

नयनन बनज बसाऊँ री जो मैं साहिब पाऊँ री।
इन नयनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न नाऊँ री।

इत्यादि सन्तों के निर्गुण भक्तिभाव वर्णन कर जाती हैं।

किसी सिद्धान्त या सम्प्रदाय के बन्धन में न बंध कर उन्होंने अपने व्यवहार में आने वाली (१) राजस्थान, (२) ब्रज, (३) गुजराती— इन तीनों भाषाओं तथा कृष्ण के पौराणिक प्रभाव से रहित शुद्ध सात्त्विक कृष्ण-रूपधर ब्रह्म को ही नाना प्रकार से रिझाने के लिए अपने आपको कविता के रूप में प्रकट किया है। इनकी नरसिंह जी का मायरा, गीत-गोविन्द की टीका, राग-गोविन्द, राग-सोरठ के पद—ये चार रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

### पद

**बसो मोरे नैनन में नँदलाल ॥ टेक ॥**
**मोहनी मूरति साँवरी सूरति, नैणा बने बिसाल।**
**अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजन्ती माल।**
**छुद्र घंटिका कटि तट सोभित, नूपुर सबद रसाल।**
**मीराँ प्रभु संतन सुखदाई, भक्त बछल गोपाल ॥**

**नैनन बनज बसाऊँ री, जो मैं साहिब पाऊँ री ॥ टेक ॥**
**इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न नाऊँ, री।**
**त्रिकुटी महल में बना है झरोखा, तहाँ से झाँकी लगाऊँ, री।**

सुन्न महल में सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ, री ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ, री ॥

मैं गिरधर रँग राती, सैयाँ मैं० ॥ टेक ॥
पचरँग चोला पहर सखी मैं, झिरमिट खेलन जाती ।
ओह झिरमिट माँ मिल्यो साँवरो, खोल मिली तन गाती ।
जिनका पिया परदेस बसत है, लिख लिख भेजें पाती ।
मेरा पिया मेरे हीय बसत है, ना कहुँ आती जाती ।
चँदा जायगा सूरज जायगा, जायगी धरणि अकासी ।
पवन पाणी दोनुं ही जायँगे, अटल रहे अविनासी ।

बड़े घर ताली लागी रे, म्हाराँ मन री उणारथ भागी रे ॥ टेक ॥
छीलरिये म्हाँरो. चित्त नहीं रे, डाबरिये कुण जाव ।
गंगा जमुना सूँ काम नहीं रे, मैं ता जाइ मिलूँ दरियाव ।
हाल्याँ मोल्याँ सूँ काम नहीं रे, सीख नहीं सिरदारं ।
कामदाराँ सूँ काम नहीं रे, मैं तो जाव करूँ दरबार ।
काच कथीर सूँ काम नहीं रे, लोहा चढ़े सिर भार ।
सोना रूपा सूँ काम नहीं रे, म्हाँरे हीराँ रो बौपार ।
भाग हमारो जागियो रे, भयो सँमद सूँ सीर ।
इम्रित प्याला छाँड़ि कै, कुण पीवै कड़वो नीर ।
पापी को प्रभु परचो दीन्हौ, दियारे खजीना पूर ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, धणी मिल्या छै हजूर ॥

राणा जी थे क्याँने राखों म्हाँसूँ बैर ॥ टेक ॥
थे तो राणा जी म्हाँने इसड़ा लागो ज्यों ब्रच्छन में कूर ।
महल अटारी हम सब त्याग्या, त्याग्यो थाँरो बसनो सहर ।
काजल टीकी राणा हम सब त्याग्या भगवीं चादर पहर ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, इमरित कर दियो जहर ॥

पग घुँघरू बाँध मीराँ नाची, रे ।। टेक ।।
मैं तो मेरे नारायण की, आपहि होगइ दासी, रे ।
लोग कहें मीराँ भई बावरी, न्यात कहैं कुलनासी, रे ।
विष का प्याला राणाजी भेज्या, पीवत मीराँ हाँसी, रे ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सहज मिले अबिनासी, रे ।

जोगियाजी निसदिन जोऊँ बाट ।। टेक ।।
पाँव न चालै पंथ दुहेलो, आड़ा औघट घाट ।
नगर आइ जोगी रम गया रे, मो मन प्रीत न पाइ ।
मैं भोली भोलापन कीन्हौ, राख्यौ नहीं बिलमाइ ।
जोगिया कूं जोवत बोहो दिन बीता, अजहूँ आयो नाहीं ।
विरह बुझावण अन्तरि आवो, तपत लगी तन माहीं ।
कै तो जोगी जग में नहीं, कैर विसारी मोइ ।
काँइ करूँ कित जाऊँरी सजनी, नैण गुमायो रोइ ।
आरति तेरी अन्तरि मेरे, आवो आपनी जाणि ।
मीराँ व्याकुल बिरहिणी रे, तुम बिन तलफत प्राणि ।।

जोगी मत जा मत जा मत जा, पाँइ परूँ मैं चेरी तेरी हौं ।। टेक ।।
प्रेम भगति को पैंड़ों ही न्यारा, हमकूँ गैल बता जा ।
अगर चँदण की चिता बणाऊँ, अपणे हाथ जला जा ।
जल बल भई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगा जा ।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा ।।

थाँने काँई काँई कह समझाऊँ, म्हाँरा बाला गिरधारी ।। टेक ।।
पूर्ब जनम की प्रीत हमारी, अब नहिं जात निवारी ।
सुन्दर बदन जोवते सजनी, प्रीति भई छे भारी ।
म्हाँरे घरे पधारो गिरधर, मंगल गावै नारी ।
मोती चौक पूराऊँ बाल्हा, तन मन तो पर वारी ।
म्हारो सगपण तोसूँ साँवलिया, जुगसूँ नहीं विचारी ।

मीराँ कहे गोपिन को बाल्हो, हमसूं भयो ब्रह्मचारी ।
चरण सरण है दासी तुम्हारी, पलक न कीजै न्यारी ॥

डारि गयो मनमोहन पासी ॥ टेक ॥
आँबा की डालि कोइल इक बोलै, मेरो मरण अरु जग केरी हांसी ।
बिरह की मारी मैं बन बन डोलूँ, प्रान तजूं करवत ल्यूं कासी ।
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी ॥

पतियाँ मैं कैसे लिखूं, लिखिही न जाय ॥ टेक ॥
कलम धरत मेरो कर कंपत, हिरदो रहो घर्राई ।
बात कहूँ मोहि बात न आवै, नैन रहैं झर्राई ।
किस विध चरण कमल मैं गहिहौं, सबहिं अंग थर्राई ।
मीराँ कहे प्रभु गिरिधर नागर, सबही दुख बिसराई ॥

पपइया रे पिव की बाणी न बोल ॥ टेक ॥
सुणि पावेली बिरहणी रे, थारो राखेली आँख मरोड़ ।
चांच कटाऊं पपइया रे, ऊपरि कालर लूण ।
पिव मेरा मैं पिव की रे, तू पिव कहै स कूण ।
थारा सबद सुहावण रे, जो पिव मेला आज ।
चांच मढ़ाऊं थारी सोवनी रे, तू मेरे सिरताज ।
प्रीतम कूं पतियाँ लिखूं, कउवा तू ले जाइ ।
जाइ प्रीतम जी सूँ यूँ कहै रे, थाँरी बिरहणि धान न खाइ ।
मीराँ दासी ब्याकुली रे, पिव पिव करत बिहाइ ।
बेगि मिलो प्रभु अन्तरजामी, तुम बिनि रह्योही न जाइ ॥

मैं हरि बिनि क्यूं जिवूंरी माइ ॥ टेक ॥
पिय कारण बौरी भई, ज्यूं काठहि घुन खाइ ।
ओखद मूल न संचरै, माहि लाग्यो बौराइ ।
कमठ दादुर बसत जल में, जलहि तें उपजाइ ।
मीन जल के बिछुरै तन, तलफि करि मरि जाइ ।

पिव ढूंढण बन बन गई, कहुँ मुरली धुन पाइ।
मीराँ के प्रभु लाल गिरधर, मिलि गये सुख दाइ ।।

तुमरे कारण सब सुख छाडया, अब मोहि क्यूं तरसावौ हो ।। टेक ।।
बिरह विथा लागी उर अन्तर, सो तुम आप बुझावौ हो।
अब छोड़त नहिं बणै प्रभूजी, हँसि करि तुरत बुलावौ हो।
मीराँ दासी जनम जनम की, अंग से अंग लगावौ हो ।।

पिय बिनि सूनौ छै म्हाँरो देस ।। टेक ।।
ऐसा है कोई पीवकूं मिलावै, तन मन करूं सब पेस।
तेरे कारण बन बन डोलूं, कर जोगण को भेस।
अवधि वदीती अजूं न आए, पंडर होइ गया केस।
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, तजि दियो नगर नरेस ।।

कोई कहियौ रे प्रभु आवन की।
आवन की मनभावन की, कोई० ।। टेक ।।
आप न आवै लिख नहिं भेजै, बाँण पड़ी ललचावन की।
ए दोइ नैण कह्यौ नहिं मानै, नदिया बहै जैसे सावन की।
कहा करूँ कछु नहिं बस मेरो, पाँख नहीं उड़ जावन की।
मीराँ कहै प्रभु कब रे मिलोगे, चेरी भइ हूँ तेरे दांवन की ।।

झुक आई बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की ।। टेक ।।
सावन में उमँग्यों मेरो मनवा, भनक सुनी हरि आवन की।
उमड़ घुमड़ चहुँ दिस से आयो, दामण दमक झर लावन की।
नन्ही नन्ही बूंदन मेहा बरसै सीतल पवन सोहावन की।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आनँद मंगल गावन की ।।

बदला रे तू जल भरि ले आयो ।। टेक ।।
छोटी छोटी बूंदन बरसन लागी, कोयल सबद सुनायो।
गाजै बाजै पवन मधुरिया, अम्बर बदराँ छायो।
सेझ सँवारी पिय घर आये, हिलमिल मंगल गायो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, भाग भलो जिन पायो ।।

म्हाराँ ओलगिया घर आया जी ॥ टेक ॥
तन की ताप मिटी सुख पाया, हिलमिल मंगल गाया, जी ।
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यूं मेरे आणँद आया, जी ।
मगन भई मिलि प्रभु अपणासूं, भौ का दरथ मिटाया, जी ।
चन्द कूं देखि कमोदणि फूलै, हरखि भया मेरी काया, जी ।
रग रग सीतल भई मेरी सजनी, हरि मेरे महल सिधाया, जी ।
सब भगतन का कारज कीन्हा, सोई प्रभु मैं पाया, जी ।
मीराँ बिरहणि सीतल होई, दुख दुन्द दूरि न्हसाया, जी ।

मैं तो राजी भई मेरे मन में, मोहि पिया मिले इक छिन में ॥ टेक ॥
पिया मिल्या मोंहि किरपा कीन्हीं, दीदार दिखाया हरि ने ।
सतगुरु सबद लखाया असरी, ध्यान लगाया धुन में ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मगन भई मेरे मन में ॥

भई हों बावरी सुनके बांसुरी, हरि बिनु कछु न सुहाये माई ॥ टेक ॥
श्रवन सुनत मेरी सुध बुध बिसरी, लगी रहत तामें मन की गाँसु, री ।
नेम धरम कोन कीनी मुरलिया, कोन तिहारे पासु, री ।
मीराँ के प्रभु बस कर लीने, सप्तताननि की फाँसु, री ॥

कुण बाँचै पाती, बिना प्रभु कुण बाँचै पाती ।
कागद ले ऊधो जी आयो, कहाँ रह्या साथी ।
आवत जावत पाँव घिस्यारे (बाला), अँखियाँ भईं रातीं ।
कागद ले राधा बांचण बैठी, भर आई छाती ।
नैण नीरज में अंब बहे रे (बाला), गंगा बहि जाती ।
पाना ज्यूं पीली पड़ी रे (बाला), अन्न नहिं खाती ।
हरि बिन जिवड़ा यूं जलै रे (बाला), ज्यूं दीपक सँग बाती ।
म्हने भरोसो राम को रे (बाला), डूबत तिरचो हाथी ।
दास मीराँ लाल गिरधर, सांकड़ारो साथी ॥

# रसखान

## जीवन-परिचय

जन्म सं० १६१५ देहली में  मृत्यु सं० १६९०

अनन्य कृष्ण-भक्त मुस्लिम कवि रसखान दिल्ली के पठान सरदार थे। ये शाही खानदान के थे। जैसा कि 'प्रेमवाटिका' में लिखा है :—

देखि गदर हित साहिबी दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादशाह वंश की ठसक छांड़ि रसखान ।।

कहा जाता है कि ये श्रीकृष्ण के परम भक्त और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के अत्यन्त कृपापात्र शिष्य व आरम्भ से ही प्रेमी जीव थे। इनकी भाषा बड़ी ही सरल, सरस और शब्दाडम्बर से रहित है। इनके सवैयों में प्रेम अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ प्रतीत होता है। इसीलिए जन-साधारण के प्रेम-सम्बन्धी कवित्त सवैयों को ही 'रसखान' कहने लगे। यद्यपि इनकी रचना परिमाण में स्वल्प ही है तथापि कृष्णभक्त-प्रेमियों के मर्म को स्पर्श करने वाली है। अन्यान्य कृष्ण-भक्त कवियों ने गीत लिखे हैं, परन्तु इन्होंने अपनी कविता के लिए कवित्त सवैयों का आश्रय लिया है। अनुप्रास की सुन्दर लय से युक्त चुस्त और मनोहर भाषा में प्रेम व भक्ति का सजीव चित्र खींचने में तो रसखान अपने उपमान आप ही हैं।

इनकी दो रचनाएँ अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। १—सुजान-रसखान, २—प्रेमवाटिका। सुजान-रसखान में १२० पद्य सवैया, घनाक्षरी छन्दों में हैं तथा कुछ एक दोहे सोरठे भी हैं। प्रेमवाटिका में ५२ दोहे हैं।

### सार और समीक्षा

रसखान की पुस्तकों को देखने से पता चलता है कि ये वास्तव में एक प्रेमी जीव थे, जिन्हें विरक्ति ने लौकिक प्रेम-सरिता से बाहर निकालकर

श्रीभगवान् कृष्णचन्द्र के अलौकिक भक्ति-सागर में डाल दिया था। इनके प्रत्येक पद्य में प्रेममयी भक्ति का ही अनोखा रंग दीख पड़ता है। इस कारण अपने समय के बहुत से अन्य भक्तों की भांति इन्हें अपने इष्टदेव की न तो कोई लम्बी चौड़ी प्रशंसा करनी है और न मुक्ति अथवा वैकुण्ठवास की चाह में आत्मग्लानि से सने हुए विनय के पद ही निर्माण करने हैं। ये तो साधारण अहीर के घर खेल-कूद करने तथा वृन्दावन में गाय चराते समय विविध लीलाओं में सदा दत्तचित्त रहने वाले कृष्ण को निर्निमेष दृष्टि से ही केवल देखते रहना चाहते हैं। उनकी धारणा है कि अनेक जन्मों तक भी यदि मैं उसे देखता रहूँ तो भी मेरे नयनों को तृप्ति नहीं मिल सकती।

रसखान हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों से भी बहुत कुछ परिचित थे। उन्होंने अपने 'सुजान-रसखान' में एक-एक पद्य गंगा तथा शिव की स्तुति में भी लिखा है। परन्तु इनकी किसी भी पुस्तक में इस्लाम धर्म का प्रभाव कदाचित् ही देखने को मिलेगा। ये साहित्य के मुख्य-मुख्य अंगों के जानकार ज्ञात होते हैं। कोरे शृंगार रस की कई एक कविताएँ भी इनके 'सुजान-रसखान' नामक ग्रन्थ में मिलती हैं। दो-चार स्थलों पर तो भाव कुछ अश्लीलता तक आ गये हैं; किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी भक्त रसखान की कविता बड़ी ही मनोहारिणी है। इनके भाव अन्तस्तल से प्राकृतिक झरने की धारा के समान स्वभावतः निकलकर प्रवाहित हुए हैं और भाषा इनकी ऐसी मँजी हुई है कि व्यर्थ के प्रयोगों का कहीं नाम तक नहीं। मुहावरे की अधिकता तथा दैनिक व्यवहारों के साधारण उल्लेख से रसखान की कविता में सब कहीं प्रसाद गुण के चमत्कार दीख पड़ते हैं।

रसखान के कवित्त सचमुच रस की खान हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं व उनके मोहक प्रभाव का ऐसा हृदयस्पर्शी वर्णन तो कृष्ण का परम भक्त कोई हिन्दू कवि भी शायद ही कर पाया हो।

'मानुष हौं तो वही रसखान बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन' आदि कवित्त से अपने प्रभु श्रीकृष्ण के प्रति उनकी अटल निष्ठा प्रकट होती है।

'कानन दे अँगुरी रहि हौं, जब ही मुरली ध्वनि मन्द बजैहै ।'

और--

'आजु अली इक गोप लली भई बावरी नेकु न अंग सँभारे ।'

आदि कवित्तों में श्रीकृष्ण की सुधा-रसवर्षिणी वंशी की अलौकिक प्रभविष्णुता का ऐसा प्राणों को अपूर्व प्रेरणा दान करने वाला चित्रण हुआ है कि भावुक रसिक इन कवित्तों को पढ़ते-पढ़ते इस प्रकार तन्मय हो जाता है मानो वह स्वयं अपने कानों मुरली की तान सुन-सुन कर आत्मविभोर हो गया हो । रसखान की सी तन्मयता हमें अन्यत्र बहुत कम दिखाई देती है । रसखान के ये कवित्त 'सुजान-रसखान' नामक उनके ग्रंथ से लिये गये हैं ।

## सरस सवैये

कहा 'रसखानि' सुखसंपति सुमार कहा,
कहा महा जोगी ह्वै लगाये अंग छार को ।
कहा साधे पंचानल कहा सोये बीच जल,
कहा जीत लीने राज सिंधु आर पार को ।।
जप बार बार तप संजम अपार व्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को ।
कीन्हों नहिं प्यार सेयो दरबार, चित--
चाह्यौ न निहारह्यो जौ पै नन्द के कुमार को ।।

सुनिये सबकी कहिए न कछू रहिए इमि या भव-बागर में ।
करिए व्रत नेम सचाई लिए, जिनतें तरिए भव-सागर में ।।
मिलिए सब सों दुरभाव बिना, रहिए सतसंग उजागर में ।
'रसखानि' गुविन्दहिं यों भजिए जिमि नागरि को चित गागर में ।।

बैन वही उनको गुन गाइ, औ कान वही उन बैन सों सानी।
हाथ वही उन गात परैं, अरु पांय वही जु वही अनुजानी ॥
जान वही उन प्रान के संग, औ मान वही जु करे मनमानी।
त्यों 'रसखानि' वही रसखानि, जु है रसखानि सो है रसखानी ॥

इक ओर किरीट लसै दुसरी दिसि, नागन के गन गाजत री।
मुरली मधुरी धुनि ओठन पे, उत डामर नाम सों बाजत री ॥
'रसखानि' पितम्बर एक कंधा पर एक बघंबर छाजत री।
अरी देखहु संगम लै बुड़की, निकसे यह भेख बिराजत री ॥

यह देख धतूरे के पात चबात, औ गात सौं धूलि लगावत हैं।
चहुं ओर जटा अँटकी लटकै, सुभ सीस फनी फहरावत हैं ॥
'रसखानि' जेई चितवो चित दै, तिनके दुख दुन्द भगावत हैं।
गज-खाल कपाल की माल बिसाल, सो गाल बजावत आवत हैं ॥

बैद की औषधि खाइ नहीं, न करै वह संजम री सुन मोसें।
तेरोई पानी पियें 'रसखानि', सजीवन जानि लहैं सुख तोसें ॥
ए री सुधामयी भागीरथी, सब पथ्य कुपथ्य बनें तुहि पोसें।
आक धतूरो चबात फिरैं, बिष खात फिरैं शिव तेरे भरोसें ॥

द्रोपदी औ गनिका गज गीध, अजामिल जो कियो सो न, निहारो।
गौमती गेहनी कैसे तरी, प्रहलाद को कैसे हरचो दुख भारो ॥
काहे को सोच करे 'रसखानि', कहा करिहै रविनन्द बिचारो।
कौन की संक परी है, जु माखन, चाखनहारो सो राखनहारो ॥

मानुष हौं तौ वही 'रसखानि', बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पशु हौं तौ कहा बस मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन ॥
पाहन हौं तौ वही गिरि को, जो धरचो कर छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं नित, कालिंदी कूल कदम्ब की डारन ॥

जो रसना रस ना बिलसै, तेहि देहु सदा निज नाम उचारन।
जो कर नीकी करैं करनी, जुपे कुंज कुटीरन देहु बुहारन ॥

सिद्धि समृद्धि सबै 'रसखानि', लहौं ब्रज रेणुका अंग सँवारन ।
खास निवास मिलै जु पै तौ वहां, कालिंदी कूल कदम्ब की डारन ॥

सेस, सुरेस, दिनेस, गनेस, प्रजेस, धनेस, महेस मनाओ ।
कोऊ भवानी भजौ मन की, सब आस सबै विधि जाय पुराओ ॥
कोऊ रमा भजि लेहु महाधन, कोऊ कहूं मन बांछित पाओ ।
पै 'रसखानि', वही मेरो साधन, और त्रिलोक रहौ कि नसाओ ॥

या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूं पुर को तजि डारौं ।
आठहुं सिद्धि नवों निधि को सुख, नन्द की गाय चराय बिसारौं ॥
'रसखानि' कबौं इन आंखिन तै, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं ।
कोटिनहूं कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर बारौं ॥

आजु गई हुती भोरहिं हौं, रसखानि रई कहि नन्द के भौनहिं ।
वाको जियौ जुग लाख करोर, जसोमति को सुख जात कह्यो नहिं ॥
तेल लगाइ, लगाइ कै अंजन, भौंह बनाइ, बनाइ डिठौनहिं ।
डारि हमेल निहारति आनन, वारति ज्यों चुचकारति छौंनहिं ।

धूर भरे अति सोभित स्याम जू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी ॥
खेलत खात फिरैं अँगना, पग पैजनियां कटि पीरी कछोटी ॥
वा छबि को रसखानि विलोकत, बारत काम कलानिधि कोटी ।
काग के भाग बड़े सजनी, हरि हाथ सौं लै गयो माखन रोटी ॥

अपनो सो ढोटा हम सबही को जानत हैं,
दोऊ प्रानी सबही के काज नित धावहीं ।
ते तौ 'रसखानि' अब दूर ते तमासो देखैं,
तरनि-तनूजा के निकट नहिं आवहीं ॥
आये दिन बात अनहितुन सौं कहौं कहा,
हितु जेऊ आये तेऊ लोचन दुरावहीं ।
कहा कहौं आली खाली देत सब ताली,
हाय मोरे बनमाली कौ न काली ते छुड़ावहीं ॥

सेस, गनेस, महेस, दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं ।
जाहि अनादि अनन्त अखंड, अछेद अभेद सुबेद बतावैं ॥
नारद सैं सुक व्यास रटैं, पचि हारे तऊ पर पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियां, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥

ब्रह्म मैं ढूंढ्यौ पुरानन गानन, वेद रिचा सुनी चौगुने चायन ।
देख्यो सुन्यो न कहूं कबहूं, वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन ॥
टेरत हेरत हारि परचो, रसखानि बतायो न लोग लुगायन ।
देख्यो दुरचो वह कुंज कुटीर में, बैठो पलोटत राधिका पायन ॥

ग्वालन संग जैबो औ चरैबो गाय उनही संग,
हेरि तान गैबो सोचि नैन फरकत हैं ।
ह्यां के गजमुक्तामाल वारों गुंजमालिन पै,
कुंज सुधि आये हाय प्रान धरकत हैं ॥
गोबर को गारो सु तो मोहिं लगै प्यारो,
नाहिं भावै ये महल जे जटित मरकत हैं ।
मन्दर ते ऊंचे जहां मन्दिर हैं द्वारिका के,
ब्रज के खिरक मेरे हिय खरकत हैं ॥

गोरज विराजै भाल लहलही बनमाल,
आगे गैयाँ पाछे ग्वाल गावैं मृदु तान री ।
जैसी धुनि बांसुरी की मधुर मधुर, तैसी,
बंक चितवनि मंद मंद मुसकान री ॥
कदम बिटप के निकट तटिनी के तट,
अटा चढ़ि देखे पीतपट फहरानि री ।
रस बरसावै तन तपन बुझावै, नैन,
प्राननि रिझावै वह आवै 'रसखानि' री ॥

आयो हुतो नियरे 'रसखानि' कहा कहूं तू न गई वह ठैयां ।
या व्रज की बनिता जिहिं देखिकै, वारहिं प्राननि लेहिं बलैयां ॥
कोऊ न काहू की कानि करै, कछु चेटक सो जु करयो जदुरैया ।
गाइगो तान जमाइगो नेह, रिझाइगो प्रान चराइगो गैयां ॥

कानन दै अँगुरी रहिहौं, जबहीं मुरली धुनि मन्द बजैहै ।
सोहनी तानन सों 'रसखानि', अटा चढ़ि गोधन गैहै तो गैहै ॥
टेरि कहां सिगरे ब्रजलोगनि, काल्हि कोऊ कितनो समुझैहै ।
माई री वा मुख की मुसकान, सम्हारि न जैहै न जैहै न जैहै ॥

मोरपखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गले पहिरौंगी ।
ओढ़ि पितम्बर लै लकुटी, बन गावत गोधन संग फिरौंगी ॥
भावतो वोहि मेरो रसखानि सों, तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी ।
पै मुरली मुरलीधर की, अधरान धरी अधरा न धरौंगी ॥

आजु अली इक गोपलली, भई बावरी नेकु न अंग सँभारै ।
मात अघात न देवन पूजत, सासु सयानी सयानी पुकारै ॥
यों 'रसखानि' घिरयो सिगरो ब्रज, आन को आन उपाय विचारै ।
कोऊ न कान्हर के कर तें, वह बैरिन बांसुरिया गहि जारै ॥

जल की न घट भरैं, मग की न पग धरैं,
घर की न कछु करैं, बैठी भरैं सांसु री ।
एकै सुनि लोट घरैं, एकै लोटपोट भइ,
एकनि के दृगनि निकसि आये आंसु री ॥
कहैं 'रसखानि' सौं सबै ब्रजवनिता बिधि,
बधिक कहाये हाय हुई कुल हांसु री ।
करिये उपाय बांस डारिये कटाय,
नाहिं उपजैगो बांस नाहिं बाजै फेरि बांसुरी ॥

कौन ठगौरी करी हरि आजु, बजाइ के बांसुरिया रस भीनी।
तान सुनी जिनहीं तिनहीं, तबहीं तिन लाज बिदा करि दीनी॥
घूमैं घरी घरी नन्द के द्वार, नवीनी कहा कहूं बाल प्रवीनी।
या ब्रजमंडल मैं 'रसखानि' सु कौन भटू जो लटू नहिं कीनी॥

दूध दुह्यो सीरो परयो तातों न जमायो बीर,
जामन दयो सो धरो धरोई खटाइगो।
आन हाथ आन पांय सबही के तबहीं तें,
जबहीं ते 'रसखानि' तानिन सुनाइगो॥
ज्यों ही नर त्यों ही नारी तैसोई तरुन बारी,
कहिये कहा री सब ब्रज बिललाइगो।
जानिये न आली यह छोहरा जसोमति को,
बांसुरी बजाइगो कि बिष बगराइगो॥

## प्रेम-वाटिका

बंक बिलोकनि, हंसनि मुरि, मधुर बैन रससानि।
मिले रसिक रसराज दोउ, हरखि हिये रसखानि॥

मोहन-छबि रसखानि लखि, अब दृग अपने नांहि।
ऐंचे आवत धनुष-से, छूटे सर-से जांहि॥

या छबि पै रसखानि अब, वारौं कोटि मनोज।
जाकी उपमा कबिनु नहिं पाई, रहे सु खोज॥

प्रेम-अयनि श्रीराधिका, प्रेमवरन नँद-नन्द।
प्रेम-वाटिका के दोऊ, माली मालिन द्वन्द॥

प्रेम अगम, अनुपम, अमित, सागर-सरिस बखान।
जो आवत एहि ढिग, बहुरि जात नहीं रसखान॥

प्रेम-बारुनी छानिकैं, बरुन भये जलधीस।
प्रेमहि तें बिष पान करि, पूजे जात गिरीस॥

लोक-बेद-मरजाद सब, लाज, काज, संदेह ।
देत बहाये प्रेम करि, बिधि निषेध कौ नेह ॥

शास्त्रन पढ़ि पंडित भये, कै मौलवी कुरान ।
जु पै प्रेम जान्यो नहीं, कहा कियो रसखान ॥

बिनु गुन, जोबन, रूप, धन, बिनु स्वारथ, हित जानि ।
शुद्ध कामना तें रहित, प्रेम सकल रसखानि ॥

अति सूछम, कोमल अतिहि, अति पतरो, अति दूर ।
प्रेम कठिन सब तें सदा, नित इकरस भरपूर ॥

दम्पति-सुख, अरु विषय-रस, पूजा निष्ठा ध्यान ।
इन तें परे बखानिये, शुद्ध प्रेम रसखान ॥

मित्र, कलत्र, सुबंधु, सुत, इनमें सहज सनेह ।
शुद्ध प्रेम इनमें नहीं, अकथ कथा सबिसेह ॥

इकअंगी, बिनु कारनहिं, इकरस, सदा समान ।
गनै प्रियहिं सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ॥

डरै सदा, चाहै न कछु, सहै सबै जो होय ।
रहै एकरस चाहि कैं, प्रेम बखानौ सोय ॥

'प्रेम प्रेम' सब कोउ कहै, कठिन प्रेम की फाँस ।
प्रान तरफि निकरै नहीं, केवल चलत उसाँस ॥

प्रेम हरी कौ रूप है, त्यौं हरि प्रेम स्वरूप ।
एक होइ द्वै मैं लसै, ज्यौं सूरज अरु धूप ॥

जदपि जसोदा नन्द अरु, ग्वालबाल सब धन्य ।
पै या जग में प्रेम की, गोपी भईं अनन्य ॥

वा रस की कछु माधुरी, ऊधौ लही सराहि ।
पावै बहुरि मिठास अस, अब दूजो को आहि ॥

स्रवन, कीरतन, दरसनहिं जो उपजत सोइ प्रेम।
शुद्धाशुद्ध विभेद तें, द्वै बिध ताके नेम॥

स्वारथमूल अशुद्ध त्यौं, शुद्ध स्वभावऽनुकूल।
नारदादि प्रस्तार करि, कियो जाहि कौ तूल॥

रसमय, स्वाभाविक, बिना स्वारथ, अचल महान।
सदा एकरस, शुद्ध सोइ प्रेम अहै रसखान॥

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा-बंस की ठसक छांड़ि रसखान॥

प्रेम-निकेतन श्रीबनहिं, आइ गोबर्धन धाम।
लह्यो सरन चित चाहिकै, जुगुलसरूप ललाम॥

अरपी श्री हरि-चरन-जुग, पदुम-पराग निहार।
बिचरहिं यामें रसिकवर, मधुकर निकर अपार॥

# नंददास

## जीवन-परिचय

**रचनाकाल—सं० १६२५**

**यद्यपि "दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता" में नंददास को तुलसीदास का भाई लिखा है, तथापि यह सिद्ध हो चुका है कि तुलसीदास और नंददास का आपस में कोई संबंध न था। ये गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य थे। अष्टछाप में सूरदास जी के पश्चात् इन्हीं का स्थान है।**

### सार और समीक्षा

सूर की भाषा स्वाभाविक और चलती है। किन्तु नंददास की भाषा में अनुप्रास कौर संस्कृत-पदविन्यास का पर्याप्त पुट है। नंददास जी का "भ्रमर-गीत" बहुत-से समालोचकों की दृष्टि में सूरदास जी के भ्रमर-गीत से भी उत्कृष्ट है। इस भ्रमर-गीत की सब से बड़ी विशेषता यह है कि नंददास के उद्धव, सूर के उद्धव की भांति मूक और अप्रतिभ से नहीं हैं। वे समय पर गोपियों के तर्कों का बड़े सुन्दर ढंग से खंडन करते हैं। साथ ही एक नवीन छंद के सौंदर्य से भी इनके भ्रमर-गीत में बहुत उत्कृष्टता और सरसता आ गई है, संभवतः इसी कारण ही "और कवि घड़िया, नंददास जड़िया" की उक्ति प्रचलित हुई हो।

वस्तुतः इनकी रचना इतनी रोचक और भावपूर्ण है कि उससे टक्कर लेने वाली हिन्दी में बहुत कम रचनाएँ मिलेंगी।

नाभादास ने इनके विषय में सत्य कहा है :—

लीलापद रसरीति ग्रंथ रचना में नागर।
सरल उक्तियुत युक्ति, भक्ति रसगान उजागर॥

प्रचुर पद्य लों सुयसु रामपुर ग्राम निवासी ।
सकल सुकल संवलित भक्तपद रेनु उपासी ॥
चन्द्रहास अग्रज सुहृद, परम प्रेम पथ में पगे ।
श्री नन्ददास आनन्दनिधि, रसिक सुप्रभ हित रँगमगे ॥

## भ्रमरगीत

ऊधव को उपदेश सुनो ब्रज नागरी,
रूप सील लावन्य सबै गुन आगरी ।
प्रेम धुजा रस रूपिनी उपजावनि सुख पुंज,
सुन्दर स्याम विलासिनी नव वृन्दावन कुंज ।
सुनो ब्रज नागरी ॥

सुनत स्याम को नाम ग्राम गृह की सुधि भूलीं,
भरि आनँद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूलीं ।
पुलकि रोम सब अंग भये भरि आये जल नैन,
कंठ घुटे गदगद गिरा बोले जात न बैन ।
व्यवस्था प्रेम की ॥

वै तुमतें नहिं दूर ग्यान की आंखिन देखौ,
अखिल विस्व भर पूरि रूप सब उनहिं बिसेखौ ।
लोहा दारु पखान में जल थल महि आकास,
सचर अचर बरतत सबै जोति ब्रह्म परकास ।
सुनो ब्रज नागरी ॥

कौन ब्रह्म को जोति ग्यान कासौं कहो ऊधो,
हमरे सुन्दर स्याम प्रेम को मारग सूधो ।
नैन बैन स्रुति नासिका मोहन रूप लखाय,
सुधि बुधि सब मुरली हरी प्रेम ठगोरी लाय ।
सखा सुन स्याम के ॥

जो मुख नाहिन हतो कहो किन माखन खायो,
पायन बिन गोसंग कहो बन बन को धायो।
आंखिन में अंजन दयो गोबर्द्धन लयो हाथ,
नन्द जसोदा पूत हैं कुँवर कान्ह ब्रजनाथ।
सखा सुन स्याम के ॥

जोगी जोर्तिहि भजैं भक्त निज रूपहि जानैं,
प्रेम पियूषै प्रगट स्याम सुन्दर उर आनैं।
निर्गुन गुन जो पाइये लोग कहैं यह नाहिं,
घर आयो नाग न पूजहिं बांबी पूजन जाहिं।
सखा सुन स्याम के ॥

नास्तिक जे हैं लोग कहा जानैं हित रूपै,
प्रगट भानु को छांड़ि गहै परछांही धूपै।
हमको बिन वा रूप के और न कछू सोहाय,
ज्यों करतल आमलक के कोटिक ब्रह्म दिखाय।
सखा सुन स्याम के ॥

धन्य धन्य जे लोग भजत हरि कौं जो ऐसे,
और जो पारस प्रेम बिना पावत कोउ कैसे।
मेरे या लघु ग्यान को उर मद रह्यो उपाध,
अब जान्यौं ब्रज प्रेम को लहत न आधौ आध।
बृथा स्रम करि मरयौ ॥

पुनि कह सब तें साधु संग उत्तम है भाई,
पारस परसे लोह तुरत कंचन ह्वै जाई।
गोपी प्रेम प्रसाद कौ हौं अब सीख्यौ आय,
ऊधव तें मधुकर भये दुबिधा ग्यान मिटाय।
पाय रस प्रेम को ॥

ऐसे सोचत जहां स्याम तहँ आयो धायो,
परिकरिया दँडौल बहुत आवेश जनायो।
कछु निर्दयता स्याम की करि क्रोधित दोउ नैन,
कछु ब्रज बनिता प्रेम की बोलत रस भरि बैन।
सुनो नंद लाडिले॥

करुनामयी रसिकता है तुम्हरी सब झूंठी,
जब ही लौं नहि लखौ तबहि लौं बाँधी मूठी।
मैं जान्यौ ब्रज जायकै तुम्हरो निर्दय रूप,
जो तुमको अवलम्बही तिनको मेलौ कूप।
कौन यह धर्म है॥

ह्वै सचेत कहि भलो सखा पठयो सुधि ल्यावन,
अवगुन हमरे आनि तहां ते लगे बतावन।
मो मैं उनमैं अन्तरों एकौ छिन भरि नाहिं,
ज्यों देखौ मो माँहि वै त्यौं मैं उनहीं माँहि।
तरंगनि बारि ज्यों॥

सुनत सखा के बैन नैन भरि आए दोऊ,
बिबस प्रेम आबेस रही नाहीं सुधि कोऊ।
रोम रोम प्रति गोपिका ह्वै रहि साँवर गात,
कल्प तरोरुह साँवरो ब्रज बनिता भइ पात।
उलहि अँग अंगते॥

गोपी रूप दिखाय तबै मोहन बनवारी,
ऊधो भ्रमहिं निवारि डारि मुख मोह की जारी।
अपनौ रूप दिखाय कैं लीन्हों बहुरि दुराय,
नन्ददास पावन भयो जो यह लीला गाय।
प्रेम रस पुंजनी॥

# केशव

## जीवन-परिचय

जन्म सं० १६१२ मृत्यु सं० १६७३

महाकवि केशव प्रसिद्ध ज्योतिषी पं० काशीनाथ के पुत्र थे और ओरछा नरेश महाराज रामसिंह के आश्रय में रहते थे। ये काव्य में अलंकार का स्थान मुख्य मानने वाले चमत्कारवादी कवि थे, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा था :—

जदपि सुजाति सुलच्छिनी, सुवरन सरस सुवृत्त।  
भूषण बिनु न बिराजई, कविता, बनिता, मित्त॥

केशव कवि तथा आचार्य भी थे। उन्होंने संस्कृत-साहित्य से सामग्री लेकर अपने पांडित्य व रचना-कौशल का अच्छा परिचय दिया है। इनके संवादों में पात्रों के अनुकूल क्रोध, उत्साह आदि की व्यंजना भी बड़ी प्रभावपूर्ण और हृदयहारिणी हुई है। वाक्पटुता और राजनीतिक दाव-पेंच का आभास भी प्रभावोत्पादक है। इनके रावण-अंगद-संवाद, लवकुश-संवाद तथा युद्ध-वर्णन एक दृष्टि से तो तुलसी से भी बढ़कर हैं। यद्यपि इनकी अनेक कविताएं, अन्य कवियों की भांति सुनते ही तत्काल समझ में नहीं आतीं, उसके लिए कुछ विचार की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु जितना ही अधिक विचारिए उतनी ही मिठास भी बढ़ती जाती है, इसमें कुछ संदेह नहीं। इनकी रामचन्द्रिका एक सुन्दर प्रबन्ध-काव्य है, जिसमें विभिन्न छन्दों में रामकथा कही गई है। जन-सामान्य में इसका प्रचार भले ही 'मानस' के समान नहीं हो पाया तथापि विद्वत्ता व पांडित्य की दृष्टि से इसका पर्याप्त आदर हुआ है। इनकी ये रचनाएँ प्रसिद्ध हैं :—

(१) रामचन्द्रिका, (२) कविप्रिया, (३) रसिकप्रिया, (४) विज्ञान-

गीता, (५) वीरसिंहदेव चरित, (६) जहाँगीर-जसचन्द्रिका आदि।

## सार और समीक्षा

केशव के काव्य में कलात्मकता का चमत्कार खूब निखरा है। पंचवटी के वर्णन में तथा ऐसे दूसरे प्रसंगों से उनकी कलात्मक रुचि स्पष्ट प्रकट होती है।

'भूषण विनु न बिराजइ कविता, बनिता, मित्त' के अनुसार उनकी प्रत्येक कविता में अलंकारों की भरमार है। उनके काव्य से कवित्व की अपेक्षा पाण्डित्य अधिक झलकता है। इस प्रकार भक्ति-काल में रहकर भी वे रीति-काल के प्रवर्त्तक सिद्ध होते हैं। रावण-अंगद-संवाद में अंगद की वचन-चातुरी तथा रावण की आत्म-श्लाघा के भाव भी सुन्दर कलात्मकता के साथ अभिव्यक्त हुए हैं। लव-कुश का युद्ध भी वीरोल्लास से भरा हुआ है। इस प्रकार केशव की कला उनके आचार्यत्व को स्पष्ट रूप से घोषित करती है। केशव वास्तव में संक्रमण-काल के कवि थे। एक ओर भक्ति-काल को उन्होंने अपने काव्य में समेटा हुआ है तो दूसरी ओर रीतिकालीन प्रवृत्तियां भी उनके काव्य में विकासोन्मुखी हो रही हैं। केशव के काव्य को पढ़ते-पढ़ते प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि उनके समय तक भक्तिकालीन भव्य-भाव-प्रवण भावुकता, कला की कलित कमनीयता की ओर अत्युत्कटता के साथ उन्मुख हो गई थी। इस प्रकार आचार्य केशव ने आगामी काव्य-प्रवृत्तियों का अपनी रचनाओं के द्वारा स्पष्ट संकेत दे दिया था कि कविता की धारा अब किस ओर मुड़ने को है।

### गोदावरी-वर्णन

**अति निकट गोदावरी पाप संहारिणी। चल तरंग तुंगावली चारु संचारिणी।।**
**अलि कमल सौगंधलीला मनोहारिणी। बहु नयन देवेश-शोभा मनोधारिणी।।**

**रीति मनो अविवेक की थापी। साधुन की गति पावत पापी।।**
**कंजन की मति सी बड़ भागी। श्रीहरि मन्दिर सों अनुरागी।।**

निपट पतिव्रत धरणी । मगजन को सुखकरणी ।
निगति सदा गति सुनिये । अगति महापति गुनिये ॥
विषमय यह गोदावरी अमृत के फल देति ।
केशव जीवनहार को दुख अशेष हरि लेति ॥

## राम का अश्वमेध यज्ञ

बिश्वामित्र बसिष्ठ स्यों एक समय रघुनाथ ।
आरंभ्यो केशव करन अश्वमेध की गाथ ॥

मैथिली समेत तौ अनेक दान मैं दियो ।
राजसूय आदि दै अनेक यज्ञ मैं कियो ॥
सीय-त्याग पाप ते हिये सु हौं महा डरौं ।
और एक अश्वमेध जानकी बिना करौं ॥

धर्म कर्म कछु कीजई सफल तरुणि के साथ ।
ता बिन जो कछु कीजई निष्फल सोई नाथ ॥

करिये युत भूषण रूप रयी । मिथिलेशसुता इक स्वर्णमयी ॥
ऋषिराज सबै ऋषि बोलि लिये । सुचि सों सब यज्ञ-बिधान किये ॥
हय शालन ते हय छोरि लियो । शशि वर्ण सो केशव शोभरयो ॥
अति श्यामल एक बिराजतु है । अलि स्यों सरसीरुह लाजतु है ॥

पूजि रोचन स्वच्छ अच्छत पट्ट बाँधिय भाल ।
भूषि भूषण शत्रुदूषन छोड़ियो तेहि काल ॥
संग लै चतुरंग सैनहिं शत्रुहंता साथ ।
भाँति-भाँतिन मान दै पठये सु श्रीरघुनाथ ॥

जात हैं जित बाजि केशव जात हैं तित लोग ।
बोलि बिप्रन दान दीजत यत्र तत्र सभोग ॥

वेणु बीण मृदंग बाजत दुन्दुभी बहु भेव।
भाँति भाँतिन होत मंगल देव से नर देव ॥

राघव की चतुरंग चमूचय को गनै केशव राज समाजनि।
सूर तुरंगन के उरझै पग तुंग पताकनि की पट साजनि ॥
टूटि परै तिनतें मुक्ता धरणी उपमा वरणी कवि राजनि।
बिंदु किधौं मुख फेनन के किधौं राज सिरी श्रव मंगल लाजनि ॥

राघव की चतुरंग चमूचय धूर उठी जलहू थल छाई।
मानो प्रताप हुतासन धूम को केशवदास अकासन भाई ॥
मेटि कै पंच प्रभूत किधौं विधि रेणुमयी नव रीति चलाई।
दुःख निवेदन को भुव भारको भूमि किधौं सुरलोक सिधाई ॥

नाद पूरि धूरि पूरि तूरि बन चूरि गिरि,
सोखि सोखि जल भूरि भूरि थल गाथ की।
केशोदास आस-पास ठौर ठौर राखि जन,
तिनकी सम्पत्ति सब आपने ही हाथ की ॥
उन्नत नवाय नत उन्नत बनाय भूप,
शत्रुन की जीविका ऽति मित्रन के साथ की ॥
मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित कै,
आई दिसि दिसि जीति सेना रघुनाथ की ॥

दिसि विदिसिन अवगाहि कै सुख ही केशवदास।
बालमीकि कै आश्रमहिं गयो तुरंग प्रकाश ॥

दूरिहि ते मुनि बालक धाये। पूजित बाजि बिलोकन आये ॥
भाल को पट्ट जहीं लव बाँच्यो। बांधि तुरंगम जयरस राच्यो ॥
घोर चमू चहुँ ओर से गाजी। कौनेहि रे यह बाँधियो बाजी ॥
बोलि उठे लव मैं यहि बाँध्यो। यों कहि कै धनुसायक साध्यो ॥
मारि भगाय दिये सिगरे यौं। मन्मथ के शर ज्ञान घने ज्यौं ॥

योद्धा भगे वीर शत्रुघ्न आये । कोदण्ड लीन्हे महारोष छाये ॥
ठाढ़ो तहां एक बालै बिलोक्यो । रोक्यो तहीं जोर नाराच मोक्यो ॥

## रावण-अंगद-संवाद

पढ़ौ विरंचि मौन बेद, जीव सोर छंडि रे ।
कुबेर बेर कै कही न यक्ष भीर मंडि रे ?
दिनेश जाय दूरि बैठि नारदादि संग ही ।
न बोलु चन्द मन्द-बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं ॥
अंगद यों सुनि बानि, चित्त महा रिस आनी ।
ठेलि कै लोग अनैसे, जाय सभा महँ बैसे ॥

कौन के सुत ? बालि के । वह कौन बालि ? न जानिये ।
काँख चाँपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिये ॥
है कहां वह ? बीर अंगद देवलोक बताइयो ।
क्यों गयो ? रघुनाथ-बान-विमान बैठि सिधाइयो ॥
लंकनायक को ? विभीषण, देव दूषण को दहै ।
मोहि जीवत होहि क्यों ? जग तोहि जीवित को कहै ॥
मोहि को जग मारिहै ? दुरबुद्धि तेरिय जानिये ।
कौन बात पठाइयो कहि बीर बेगि बखानिये ॥

लोकलोकेश स्यों जु ब्रह्मा रचे आपनी आपनी सीव सो सो रहैं ।
चारि बाहैं धरैं बिष्णु रक्षा करैं बात साँची यहै बेद बानी कहैं ॥
ताहि भ्रू भंग ही देव देवेश स्यों बिष्णु ब्रह्मादि दै रुद्र जू संहरैं ।
ताहि हों छोड़ि कै पाँय काके परौ ? आजु संसार तो पाँय मेरे परैं ॥

सिन्धु तरचो उनको बनरा, तुम पै धनुरेख गई न तरी ।
बाँदर बाँधत सो न बँध्यो, उन वारिधि बाँधि कै बाट करी ।
श्री रघुनाथ-प्रताप की बात तुम्हें दसकंठ न जानि परी ।
तेलहु तूलहु पूंछ जरी न जरी, जरि लंक जराइ जरी ॥

चेटक सों धनु भंग किये, तन रावन के अति ही बलु हो ।
वाण समेत रहे पचिकैं तहँ जा सँग, पै न तजौ थलु हो ।।
वाण सु कौन? बली बलि को सुत वैं बलि, बावन बाँधि लियो ?
वेई सु तौ जिनकी चिर चेरिन नाच नचाइकै छाँड़ि दियो ।।

महा मीचु दासी सदा पाँई धोवै, प्रतीहार ह्वै कै कृपा सूर जोवै ।
छपानाथ लीन्हे रहै छत्र जाको, करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको ?
सका मेघमाला, शिखी पाककारी, करैं कोतवाली महादंड-धारी ।
पढ़ैं वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके, कहा बापुरो शत्रु सुग्रीव ताके ?

पेट चढ़्यो पलना पलका चढ़ि पालिकिहू चढ़ि मोह मढ़्यौ रे ।
चौक चढ़्यौ चित्रसारि चढ़्यौ गजवाजि चढ़्यौ गढ़ गर्व चढ़्यौ रे ।
व्योम बिमान गढ़्यौई रह्यौ कहि केशव सो कबहूँ न पढ़्यौ रे ।
चेतन नाहिं रह्यौ चढ़ि चित्त सो चाहत मूढ़ चिताहू चढ़्यौ रे ।।

पाहन ते पतिनी करि पावन, टूक कियो धनुहू हर को रे ।
छत्रविहीन करी छन में छिति गर्व हरयौ तिनके वर को रे ?
पर्वतपुंज पुरैंन के पात समान तरे, अजहूँ धरको रे ।
होयँ नरायन हू पै न ये गुन, कौन यहां नर ? बानर को रे ?

# सेनापति

## जीवन-परिचय

जन्म सं० १६४६ मृत्यु सं० १७०६

ये अनूपशहर निवासी ब्राह्मण थे। इनके 'काव्य-कल्पद्रुम' और 'कवित्त-रत्नाकर' नामक दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। कवित्त-रत्नाकर की अनेक कविताएँ भक्ति की भव्य भावना से ओत-प्रोत हैं। इनके ऋतु-वर्णन में प्रकृति के वास्तविक रूप का चमत्कृत प्रतिफलन हुआ है। इस पर कोमलकान्त पदावली ने तो सोने में सुगंध का काम कर दिया है। ये भगवान् राम के परम भक्त थे। भाषा सानुप्रास अत्यन्त अलंकृत होते हुए भी अपने स्वाभाविक प्रवाह में बह रही है। श्लेष, यमक आदि अलंकारों के भी इन्होंने बड़े ही सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

### सार और समीक्षा

सेनापति की कविताएँ 'कवित्त-रत्नाकर' नामक पुस्तक से संगृहीत की गई हैं। सेनापति के काव्य में शृंगार, वीर, रौद्र, भयानक, शांत तथा भक्ति-रस-संबंधी कविताएँ हैं। जिनमें शृंगार और भक्ति का प्राधान्य है। सेनापति भी केशव के समान अलंकार-चमत्कारवादी कवि हैं। कुछ कविताओं में श्लेष का चमत्कार अनूठा बन पड़ा है तो कहीं यमक की छटा निखर रही है। ऋतु-वर्णनों में भी यह अलंकारप्रियता परिलक्षित होती है। कवित्त-रत्नाकर की चौथी और पांचवीं तरंग के नाम राम-वर्णन और राम-रसायन-वर्णन रक्खे गये हैं, जैसा कि इन नामों से स्पष्ट प्रकट होता है। सेनापति ने भी भक्ति-काल के अन्य कवियों के समान राम-भक्ति-सम्बन्धी कविताएँ भी लिखी हैं। इस प्रकार केशव और सेनापति में पर्याप्त साम्य सिद्ध होता है। फिर भी,

सेनापति के कवित्तों में केशव की अपेक्षा कुछ विशेष प्रौढ़ता परिलक्षित होती है। प्रथम कविता में सूर्य की कान्ति और कविता की सुषमा का श्लिष्ट वर्णन है। दूसरी कविता में शिव और विष्णु की एकरूपता कही गई है। तीसरी में दानी और कंजूस को एकरूप ठहराया गया है। चौथी कविता में गुसाइयों की भिखमंगों से तुलना की गई है। आगामी तीन कविताओं में श्लिष्ट ऋतु-वर्णन है। अगली कविताओं में राम की महिमा तथा विविध ऋतुओं का आलंकारिक ढंग पर सुन्दर वर्णन हुआ है। इन कविताओं के द्वारा सेनापति की अपूर्व प्रतिभा तथा भाषा पर पूर्ण अधिकार-सम्बन्धी विशेषताएँ स्पष्ट प्रकट हो जाती हैं।

## श्लेष वर्णन

राखति न दोषै पोषै पिंगल के लच्छन कौं,
बुध कबि के जो उपकंठ ही बसति है।
जोए पद मन कौं हरष उपजावति है,
तजै को कनरसै जो छन्द सरसति है॥
अच्छर हैं विशद करति उषै आप सम,
जातैं जगत की जड़ताऊ बिनसति है।
मानौं छबि ताकी उदवत सबिता की सेना-
पति कबि ताकी कबिताई बिलसति है॥

सदा नंदी जाकौं आसा कर है विराजमान,
नीकौ घनसार हू तैं बरन है तन कौं।
सैन सुख राखै सुधा दुति जाके सेखर है,
जाके गौरी की रति जो मथन मदन कौं॥
जो है सब भूतन कौं अन्तेर निवासी, रमैं,
धरै उर भोगी भेष धरत नगन कौं।
जानि बिन कहैं जानि सेनापति कहैं मानि,
बहुधा उमाधव कौं भेद छाँड़ि मन कौं॥

नाहीं नाहीं करैं थोरी माँगे सब दैन कहैं,
मंगन कौं देखि पट देत बार बार हैं।
जिनकौं मिलत भली प्रापति की घटी होति,
सदा सब जन मन भाए निरधार हैं॥
भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य,
कन कन जोरैं दान पाठ परिवार हैं।
सेनापति वचन की रचना बिचारौ जामैं,
दाता अरु सूम दोउ कीने इकसार हैं॥

गीतहि सुनावैं तिलकन झलकावैं भुज,
मूलन छपावैं द्वारका हू के पयान ही।
बैसनव भेष भगतन की कमाई खाहि,
सेवैं हरि साहिबै न साँच है निदान ही॥
देखि कै लिबास नीची सबन की नारि होति,
मोहि कै बिकच करैं मन धन ध्यान ही।
सेनापति सुमति बिचारि देखौ भली भाँति,
कलि के गुसाईं मानौं माँगना समान ही॥

रजनी के समै बिन सीरक न सोयौ जात,
प्यारी तन सुथरी निपट सुखदाई है।
रंगित सुबास राखैं भूपति रुचिर साल,
सूरज की तपति किरनि तन ताई है॥
सीतल अधिक यातैं चन्दन सुहात पर,
आँगन ही कल ज्यौं त्यौं अगिनि बराई है।
ग्रीषम की रितु हिम रितु दोऊ सेनापति,
लीजियै समुझि एक भाँति-सी बनाई है॥

तीर तैं अधिक बारिधार निराधार महा,
दारुन मकर चैन होत है नदीन कौं।

होति है करक अति बड़ी न सिराति राति,
तिल तिल बाढ़ै पीर पूरी बिरहीन कौं ॥
सीरक अधिक चारि ओर अवनी रहै न,
पाँउरीन बिना क्यौंहूँ बनत धनीन कौं।
सेनापति बरनी है बरषा सिसिर रितु,
मूढ़न कौं अगम सुगम परबीन कौं ॥

देखैं छिति अम्बर जलै है चारि ओर छोर,
तिन तरवर सब ही कौं रूप हरयौ है।
महा झर लागै जोति भादव की होति चलै,
जलद पवन तन सेक मानौं परयौ है ॥
दारुन तरनि तरैं नदी सुख पावैं सब,
सीरी घनछाँह चाहिबौई चित धरयौ है ॥
देखौ चतुराई सेनापति कबिताई की जु,
ग्रीषम बिषम बरषा की सम करयौ है ॥

द्विजन की जामैं मरजाद छूटि जाति भेष,
पहिले बरन कौं न तनकौ निदान है।
अंग छबि लीन स्रुति धुनि सुनियै न मुख,
लागी अब लार है न नाक हू कौं ज्ञान है ॥
देखियै जवन सोभा घनी जुगलीन माँझ,
नाम हू सौं नातौ कृष्ण केसौ कौं जहाँ न है।
सेनापति जामैं जग आसा ही सौं भटकत,
याही तैं बुढ़ापौ कलिकाल के समान है ॥

कुस लव रस करि गाई सुर धुनि कहि,
भाई मन सन्तन के त्रिभुवन जानी है।
देवन उपाइ कीनौ यहै भौ उतारन कौं,
बिसद बरन जाकी सुधा सम बानी है ॥

भुवपति रूप देह धारी पुन्न सील हरि,
आई सुरपुर तें धरनि सियरानी है।
तीरथ सरब सिरोमनि सेनापति जानी,
राम की कहानी गंगा-धार सी बखानी है॥

बानरन राखै तोरि डारत है अरि लंकै,
जाके बीर लछन बिराजत निदान है।
अंगन कौं राखै बाहु दूरि करै दूषन कौं,
हरि सभा राजै राज तेज कौं निधान है॥
आनँद मगन दृग देखि जाहि सियरानी,
सेनापति जाके हेम नगर कौं दान है।
महा बली बीर बसुदेव कौं कुँवर कान्ह,
सो तौ मेरे जान राजा राम के समान है॥

धरचौ है रसाल मौर सरस सिरस रुचि,
ऊँचे सब कुल मिले गनत न अन्त है।
सुचि है अवनि बारी भयौ लाज होम तहाँ,
भौंरी देखि होत अलि आनँद अनन्त है॥
नीको अगवानी होत सुख जनवासौ सब,
सजी तेल ताई चैन मैंन मयमंत है।
सेनापति धुनि द्विज साखा उच्चरत देखौ,
बनी दुलहिन बनी दूलह बसन्त है॥

देखत न पीछे कौं निकासि कैंयौ कोसन तैं,
लै कै करवाल बाग लेत बिलसत हैं।
साहस की ठौर भीर परे तें सिर कटाहैं,
सकतिन हू सौं लरिकानि कौं तजत हैं॥
राखत नगारौ रज पूरे रहैं समर मैं,
सदा कर करैं सरन कौं जे तकत हैं॥

सेनापति बीर सौं लरत हाथ जोरत हैं,
तातैं सूर कातर समान से लगत हैं ॥

## ऋतु-वर्णन

लसत कुटज, घन चम्पक, पलास, बन,
फूलीं सब साखा जै हरति जन चित्त हैं।
सेत, पीत, लाल, फूल-जाल हैं बिसाल, तहाँ,
आछे अलि अछर, जे कारज के मित्त हैं ॥
सेनापति माधव महीना भरि नेम करि
बैठे द्विज कोकिल करत घोष नित्त हैं।
कागद रँगीन मैं प्रबीन हैं बसन्त लिखे,
मानौं काम-चक्कवै के बिक्रम कबित्त हैं ॥

लाल लाल केसू फूलि रहे हैं बिसाल, संग,
स्याम रंग भेंटि मानौं मसि मैं मिलाए हैं।
तहाँ मधु-काज आइ बैठे मधुकर-पुंज,
मलय पवन उपबन-बन धाए हैं ॥
सेनापति माधव महीना मैं पलास तरु,
देखि देखि भाउ कबिता के मन आए हैं।
आधे अन-सुलगि, सुलगि रहे आधे, मानौं,
बिरही दहन काम क्वैला परचाए हैं ॥

## नीति, भक्ति, वैराग्य

नीकी मति लेह, रमनी की मति लेह मति,
सेनापति चेत कछु, पाहन अचेत है।
करम करम करि करमन कर, पाप
करम न कर, मूढ़, सीस भयौ सेत है ॥
आवै बनि जतन ज्यौं, रहै बनि जतनन,
पुन्न के बनिज तन मन किन देत है।

आवत बिराम, बैस बीती अभिराम, तातैं
करि बिसराम भजि रामैं किन लेत है ॥

कीनौ बालापन बालकेलि मैं मगन मन,
लीनौ तरुनापै तरुनी के रस तीर कौं।
अब तू जरा मैं परचौ मोह पींजरा में, सेना-
पति भजु रामैं जो हरैया दुख पीर कौं ॥
चितहिं चिताउ भूलि काहू न सताउ, आउ
लोहे कैसो ताउ, न बचाउ है सरीर कौं।
लेहु देह करि कै, पुनीत करि लेहु देह,
जीभै अवलेहु देह सुरसरि नीर कौं ॥

सोहति उतंग, उत्तमंग, ससि संग गंग,
गौरि अरधंग, जो अनंग प्रतिकूल है।
देवन कौं मूल, सेनापति अनुकूल, कटि
चाम सारदूल कौं, सदा कर त्रिसूल है ॥
कहा भटकत ! अटकत क्यौं न तासौं मन ?
जातैं आठ सिद्धि नव निद्धि रिद्धि तू लहै।
लेत ही चढ़ाइबे कौं जाके एक बेलपात,
चढ़त अगाऊ हाथ चारि फल फूल है ॥

हित उपदेश लेहु, छाँडि दै कलेस, सदा
सेइयै महेस, और ठौर कहा भटकै।
सदन उषित रहु, संतत सुखित, मति
होउ तू दुखित जोग-जाग मैं निपट कै ॥
चाहंत धतूरे अरु आक के कुसुम द्वैक,
जिनैं लेत कोई कहूँ भूलि हू न हटकै।
सेनापति सेवक कौं चारि बरदानि देव
देत हैं समृद्धि जो पुरन्दर के खटकै ॥

# बिहारी

## जीवन-परिचय

**जन्म सं० १६६० बसुआ गोविन्दपुर में          मृत्यु सं० १७२० मथुरा में**

**सर्वोत्कृष्ट श्रृंगारी कवि बिहारीलाल चौबे ब्राह्मण थे। इनकी बाल्यावस्था बुन्देलखंड में बीती। युवावस्था में कुछ वर्षों तक ये जयपुर के राजा मिर्जा जयशाह के आश्रय में रहते रहे। तदनन्तर अपने ससुराल मथुरा में जा बसे। आचार्य केशव इनके कविता-गुरु थे।**

### सार और समीक्षा

इनकी रचना परिमाण में अत्यन्त ही स्वल्प—सात सौ दोहे मात्र है। फिर भी जितनी अधिक ख्याति इनकी हुई है उतनी अन्य किसी श्रृंगारी कवि की नहीं। इनकी रचना की महत्ता इसी से स्पष्ट है कि बिहारी-सतसई की अब तक बीसियों टीकाएं, आलोचनाएं, प्रत्यालोचनाएं आदि हो चुकी हैं, तुलसी को छोड़कर अन्य किसी भी कवि पर इतना अधिक साहित्य निर्मित नहीं हुआ। बिहारी-सतसई का संस्कृत में भी 'श्रृंगारसप्तशती' के नाम से अनुवाद हो चुका है। अतः यह मानना ही होगा कि इन्होंने जो कुछ लिखा है वह अत्यन्त चमत्कारपूर्ण, सरस और मार्मिक है।

श्रृंगार के अतिरिक्त नीति, भक्ति आदि अन्यान्य विषयों पर भी बिहारी ने बहुत सुन्दर लिखा है। वाग्वैदग्ध्य तो इनका अपना विशेष गुण है। मुक्तक रचना प्रबन्ध-काव्य की अपेक्षा क्लिष्ट मानी गई है। मुक्तक काव्य के लिए आवश्यक सभी गुण बिहारी की रचना में चरमोत्कर्ष पर पहुँचे हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि किसी कवि का यश उसकी रचनाओं के परिमाण से नहीं प्रत्युत गुणों के हिसाब से होता है। बिहारी की रचना इस तथ्य का ज्वलन्त और सजीव प्रमाण है।

हिन्दी का यह महाकवि शृंगार रस के कलाकारों का शिरोमणि है और इसकी प्रतिभा का अपूर्व चमत्कार व वाग्वैदग्ध्य शृंगारिक रचनाओं में ही प्रकट हुआ है। फिर भी उन्होंने भक्ति, नीति आदि दूसरे विषयों पर जो दोहे कहे हैं वे भी एकदम अनूठे और भावभरे हैं। इतना सब कुछ होने पर भी हम यह कहने के लिए विवश हैं कि कवि की वास्तविक विशेषताओं से पूर्णतः परिचित होने के लिए उसकी प्रकृति के अनुकूल काव्य-अंशों का पठन-पाठन ही अधिक उपयुक्त और सफल हो सकता है। छात्रों के चरित्र-निर्माण के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, इस संकलन में बिहारी की अपनी प्रकृति के अनुकूल ऐसे दोहों को स्थान नहीं दिया गया है, जिनसे चरित्र-निर्माण में कोई ठेस पहुँच सके।

## दोहे

मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झांई परैं स्याम् हरित-दुति होइ ॥१॥

अजौं तरचौ ना हीं रह्यौ श्रुति सेवत इक रंग।
नाक-बास बेसरि लह्यौ बसि मुकुतन कैं संग ॥२॥

जम-करि-मुंह-तरहर परचौ, इहिं धर हरिचित लाउ।
बिषय-तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ ॥३॥

तो पर बारौं उरबसी, सुनि, राधिके सुजान।
तू मोहन कैं उरबसी ह्वै उरबसी-समान ॥४॥

कौन भाँति रहिहै बिरदु अब देखिबी, मरारि।
बीधे मोसौं आइ कैं गीधे गीधहिं तारि ॥५॥

जगतु जनायौ जिहि सकलु, सो हरि जान्यौ नांहि।
ज्यौं आंखिनु सब देखियै, आंखि न देखि जांहि ॥६॥

दीरघ सांस न लेहि दुख, सुख साईंहिं न भूलि।
दई दई क्यौ करतु है, दई दई सु कबूलि ॥७॥

तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग, रति रंग ।
अन बूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग ॥८॥

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रंग, त्यौं त्यौं उज्जलु होइ ॥९॥

कैसे छोटे नरनु तैं सरत बड़नु के काम ।
मढ़चौ दमामौ जातु क्यौं, कहि चूहे कैं चाम ॥१०॥

जपमाला, छापैं, तिलक, सरै न एकौ कामु ।
मन-कांचै नाचै बृथा, सांचे रांचै रामु ॥११॥

घरु घरु डोलत दीन ह्वै, जनु जनु जाचतु जाइ ।
दियैं लोभ चसमा चखनु लघु पुनि बड़ौ लखाइ ॥१२॥

कनक कनक तैं सौगुनी मादकता अधिकाइ ।
उहिं खाएँ बौराई, ईहिं पाएँ हीं बौराइ ॥१३॥

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु ।
जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-मग पग पग होतु प्रयागु ॥१४॥

संगति सुमति न पावहीं परे कुमति कैं धंध ।
राखौ मेलि कपूर मैं, हींग न होइ सुगंध ॥१५॥

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार ।
अब अलि, रही गुलाब में अपत कँटीली डार ॥१६॥

सीस-मुकुट कटि-काछनी, कर मुरली उर-माल ।
इहि बानक मो मन सदा बसौ, बिहारी लाल ॥१७॥

नर की अरु नल-नीर की गति एकै करि जोइ ।
जैतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊंचौ होइ ॥१८॥

बढ़त बढ़त संपति सलिल मन-सरोजु बढ़ि जाइ ।
घटत घटत सु न फिर घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ ॥१९॥

कोटि जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहिं बीचु ।
नल-बल जलु ऊंचे चढ़ै, अन्त नीच कौ नीचु ॥२०॥

तौ लगु या मन-सदन मैं हरि आवैं किंहि बाट ।
बिकट जुटे जौ लगु निपट खुटैं न कपट-कपाट ॥२१॥

भजन कह्यौ, तातैं भज्यौ, भज्यौ न एकौ बार ।
दूरि भजन जातैं कह्यौ, सो तैं भज्यौ, गँवार ॥२२॥

पतवारी माला पकरि, और न कछू उपाउ ।
तरि संसार पयोधि कौं हरि नावैं करि नाउ ॥२३॥

यह बरिया नहिं और की, तू करिया वह सोधि ।
पाहन नाव चढ़ाइ जिहिं कीने पार पयोधि ॥२४॥

अति अगाधु, अति औथरौ नदी कूपु सरु बाइ ।
सो ताकौ सागरु, जहां जाकी प्यास बुझाइ ॥२५॥

मोर-मुकुट की चंद्रिकनु यौं राजत नँदनन्द ।
मनु ससिसेखर की अकस किय सेखर सत चन्द ॥२६॥

अधर धरत हरि कैं परत, ओठ-डीठि-पट जोति ।
हरित बांस की बांसुरी इन्द्रधनुष-रंग होति ॥२७॥

करौ कुबत जगु, कुटिलता तजौं न, दीनदयाल ।
दुखी होहुगे सरल हिय, बसत त्रिभंगी लाल ॥२८॥

को कहि सकै बड़ेनु सौं लखैं बड़ीयौ भूल ।
दीने दई गुलाब की इन डारनु वे फूल ॥२९॥

समै समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोइ ।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ ॥३०॥

इही आस अटक्यो रहतु, अलि गुलाब कै मूल ।
ह्वैहैं फेरि बसन्त ऋतु इन डारन वै फूल ॥३१॥

इक भीजैं, चहलैं परैं, बूड़ैं बहैं हजार ।
किते न औगुन जग करै, बै नै चढ़ती बार ॥३२॥

मीत न नीति गलीतु ह्वै, जौ धरियै धनु जोरि ।
खाएँ खरचैं जौ जुरैं, तौ जोरियै करोरि ॥३३॥

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ।
जगतु तपोवन सौ कियौ, दीरघ-दाघ निदाघ ॥३४॥

कर लै, सूँघि, सराहि हूँ, रहे सबै गहि मौनु।
गंधी गंध गुलाब कौ, गवई गाहकु कौनु ॥३५॥

पटु पांखैं, भखु कांकरैं, सपर परेई संग।
सुखी परेवा, पुहुमि मैं, एकैं तुँही, बिहंग ॥३६॥

मनमोहन सौं मोह करि, तूं घनस्यामु निहारि।
कुंजबिहारी सौं बिहरि, गिरधारी उर धारि ॥३७॥

समै-पलट पलटत प्रकृति, को न तजै निज चाल।
भौ अकरुन करुना करौ, इहिं कपूत कलिकाल ॥३८॥

को छूटचो इहिं जाल परि, कत कुरंग, अकुलात।
ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत, त्यौं त्यौं उरझत जात ॥३९॥

कीनैं हूँ कोटिक जतन, अब कहि काढ़ै कौनु।
भौ मन मोहन रूप मिलि, पानी मैं कौ लौनु ॥४०॥

लग्यो सुमनु ह्वैहै सफलु, आतपु-रोसु निवारि।
बारी, बारी आपनी, सींचि सुहृदता-बारि ॥४१॥

लौनैं मुहुँ डीठि न लगै, यौं कहि दीनौ ईठि।
दूनी ह्वै लागन लगी, दियैं दिठौना, दीठि ॥४२॥

कहत,नटत,रीझत,खिझत, मिलत,खिलत,लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं, नैननु हीं सब बात ॥४३॥

पाइ महावरु दैन कौं, नाइनि बैठी आइ।
फिरि फिरि, जानि महावरी, एड़ी मीड़ति जाइ ॥४४॥

नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल।
अली, कली ही सौं बंध्यौ, आगैं कौन हवाल ॥४५॥

कहा भयौ, जौ बीछुरे, मो मनु तोमन साथ।
उड़ी जाउ कित हूँ तऊ, गुड़ी उड़ाइक-हाथ ॥४६॥

जब जब वै सुधि कीजिये, तब तब सब सुधि जांहि ।
आंखिनु आंखि लगी रहैं, आंखैं लागति नांहि ॥४७॥

अंग-अंग नग जगमगत, दीपसिखा सी देह ।
दिया बढ़ाऐं हूं रहै, बड़ौ उज्यारौ गेह ॥४८॥

पत्रा ही तिथि पाइए, वा घर कैं चहुँ पास ।
नित प्रति पून्यौई रहै, आनन - ओप - उजास ॥४९॥

बन-तन कौं, निकसत, लसत, हँसत हँसत, इत आइ ।
दृग-खंजन गहि लै चल्यौ, चितवनि-चैंपु लगाइ ॥५०॥

जसु अपजसु देखत नहीं, देखत साँवल-गात ।
कहा करौं, लालच-भरे, चपल नैन चलि जात ॥५१॥

छ्वै छिगुनी पहुँचौ गिलत, अति दीनता दिखाइ ।
बलि बावन कौ ब्यौंतु सुनि, को बलि, तुम्हैं पत्याइ ॥५२॥

मिलि चन्दन बेंदी रही, गोरैं मुँह न लखाइ ।
ज्यौं ज्यौं मद लाली चढ़ै, त्यौं त्यौं उघरति जाइ ॥५३॥

डीठि बरत बांधी अटनु, चढ़ि धावत न डरात ।
इतहिं उतहिं चित दुहुनु के, नट लौं आवत जात ॥५४॥

सोवत, जागत, सुपन-बस, रस, रिस, चैन, कुचैन ।
सुरति स्याम घन की सुरति, बिसरैं हूँ बिसरै न ॥५५॥

सघन कुंज, घन घनतिमिरु, अधिक अँधेरी राति ।
तऊ न दुरिहै, स्याम, बह, दीपसिखा सी जाति ॥५६॥

इत आवति चलि, जाति उत, चली छसातक हाथ ।
चढ़ी हिंडोरैं सैं रहै, लगी उसासनु साथ ॥५७॥

डीठि न परतु समान-दुति, कनकु कनक सैं गात ।
भूषन कर करकस लगत, परसि पिछाने जात ॥५८॥

तच्यौ आँच अब बिरह की रह्यो प्रेम-रस भीजि ।
नैननु कैं मग जलु बहै, हियौ पसीजि पसीजि ॥५९॥

मानहु विधि तन-अच्छ छवि, स्वच्छ राखिबैं काज ।
दृग-पग-पोंछन कौ करैं, भूषन पायंदाज ॥६०॥

टटकी धोई धोवती, चटकीली मुख-जोति ।
लसति रसोई कैं बगर, जगर मगर दुति होति ॥६१॥

कहा कुसुमु, कह कौमुदी, कितक आरसी जोति ।
जाकी उजराई लखैं, आंखि ऊजरी होति ॥६२॥

छिप्यो छबीली मुंहु लसै, नीलैं अंचर-चीर ।
मनौ कलानिधि झलमलै, कालिंदी कैं नीर ॥६३॥

ध्यान आनि ढिग प्रानपति, रहति मुदित दिन राति ।
पलकु कँपति, पुलकित पलकु, पलकु पसीजति जाति ॥६४॥

लाज-लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं ।
ए मुंह जोर तुरंग ज्यों, ऐंचत हूं चलि जाहिं ॥६५॥

कर लै चूमि चढ़ाइ सिर, उर लगाइ, भुज भेंटि ।
लहि पाती पिय की लखति, बांचति, धरती समेटि ॥६६॥

इन दुखिया अंखियानु कौं, सुखु सिरज्यौई नाहिं ।
देखैं बनै न देखतै, अनदेखैं अकुलाहिं ॥६७॥

बेसरि-मोती, धनि तुहीं, को बूझै कुल जाति ।
पीबौं करि तिय ओठ कौ, रसु निधरक दिन राति ॥६८॥

# भूषण

## जीवन-परिचय

**जन्म सं० १६७० तिकवाँपुर में** **मृत्यु सं० १७७२ में**

**वीररस के प्रसिद्ध महाकवि भूषण प्रसिद्ध कवि मतिराम व चिंतामणि त्रिपाठी के भाई थे। चित्रकूट से सोलंकी राजा रुद्र ने इन्हें 'कविभूषण' की उपाधि दी थी। तभी से यह भूषण के नाम से ही प्रसिद्ध हो गये। इनका वास्तविक नाम अब किसी को ज्ञात नहीं। पहले ये अनेक राजाओं के यहां रहे, पर अन्त में अपनी विचारधारा के अनुकूल छत्रपति महाराज शिवाजी के यहाँ आ पहुँचे। पन्ना के महाराज छत्रसाल भी इनका बहुत सम्मान करते थे। यहाँ तक कि एक बार उन्होंने इनकी पालकी में अपना कन्धा भी लगाया था। इन्हें एक-एक कविता पर महाराज शिवाजी से लाखों रुपये, कई गाँव तथा हाथी प्राप्त हुए थे।**

### सार और समीक्षा

अन्यान्य रीतिकालीन कवियों ने या तो शृंगारिक वर्णन किये हैं अथवा अपने आश्रय-दाताओं की झूठी प्रशंसा में पृष्ठ-के-पृष्ठ रंग डाले हैं। किन्तु भूषण ने न तो जनता की कुत्सित वृत्तियों को जागृत करने वाली शृंगारिक रचना ही लिखी और न किसी राजा की चाटुकारिता-पूर्ण झूठी प्रशंसा ही की। इन्होंने अत्याचार का दमन करने वाले, देश की स्वतंत्रता के सच्चे पुजारी महापराक्रमी महापुरुषों की सच्ची वीरता का बखान कर, कवि-कर्त्तव्य का पूर्णरूपेण पालन किया है। यही कारण है कि अन्यान्य कवियों द्वारा अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में लिखी हुई किसी रचना या कविता का आज कोई नाम भी नहीं लेता। किन्तु भूषण के कवित्तों को जनता बड़े उत्साह से पढ़ती है। इनके 'शिवराजभूषण',

'शिवा-बावनी' और 'छत्रसाल-दशक' ये तीन ग्रन्थ हैं।

भूषण सचमुच वीर-रसावतार थे इसमें कुछ संदेह नहीं। उनके प्रत्येक कवित्त को पढ़ते-पढ़ते प्राणवान् पाठक के मन उत्साह व वीरोल्लास से फड़कने लगते हैं। वे केवल मात्र वीरकवि थे, किसी के प्रशंसक नहीं। उन्होंने अपने काव्य के आलम्बन के रूप में राष्ट्र के रक्षक महाराज शिवाजी को अपनाया पर इतना करते हुए भी इतिहास के प्रतिकूल एक भी अक्षर नहीं लिखा। उनकी कविता इतिहास की कसौटी पर कसने पर खरी उतरती है। उनके अधिकांश कवित्त किसी-न-किसी ऐतिहासिक महत्त्व-पूर्ण घटना की ओर संकेत करते हुए प्रतीत होते हैं, जैसे—

'दारुन दुगुन दुरजोधन तें अवरंग,
भूषन भनत जग राख्यो छल मढ़ि कै।'

आदि कवित्त में शिवाजी के औरंगजेब की कैद से भाग आने का चमत्कारपूर्ण वर्णन है तो—

सिंह थरी जाने बिना जावली जंगल भठी,
हठी गज एदिल पठाय करि भटक्यो।

आदि कवित्त में आदिलशाह के सेनापति अजफल खां के वध का वर्णन है।

कविता के ओज और पौरुष का तो कहना ही क्या। उसके प्रत्येक अक्षर में बिजली के समान कड़क और चमक भरी हुई है।

भूषण सचमुच एक वीरकवि के साथ-ही-साथ इतिहास के संरक्षक राष्ट्र-निर्माता भी थे, इसमें कुछ संदेह नहीं।

## शिवा-प्रताप

**देखत उँचाई उघरत पाग, सूधी राह,**
**द्यौसहू मैं चढ़ैं ते जो साहस निकेत हैं।**
**सिवाजी हुकुम तेरो पाय पैदलन सल-**
**हेरी, परनालो ते वै जीते जनु खेत हैं॥**

सावन भादौं की भारी कुहू की अँध्यारी चढ़ि,
दुग्ग पर जात मावलीदल सचेत हैं।
'भूषन' भनत ताकी बात मैं ब्रिचारी तेरे,
परताप-रवि की उज्यारी गढ़ लेत हैं॥

कामिनी कन्त सों जामिनि चन्द सों, दामिनि पावस-मेघ-घटा सों।
कीरति दान सों, सूरति ज्ञान सों, प्रीति बड़ी सनमान महा सों॥
'भूषन' भूषन सों तरुनी, नलिनी नव पूषण देव-प्रभा सों।
जाहिर चारिहु ओर जहान लसै हिंदुवान खुमान सिवा सों॥

दारुन दुगुन दुरजोधन ते अवरंग,
भूषन भनत जग राख्यो छल मढ़ि कै।
धरम धरम, बल भीम, पैज अरजुन,
नकुल अकिल, सहदेव तेज चढ़ि कै॥
साहि के सिवाजी गाजी कर्यो दिली माहि चण्ड,
पाण्डवन हू ते पुरुषारथ सुबढ़ि कै।
सूने लाख-भौन ते कढ़े वै पांच राति मैं जु,
द्यौस लाख चौकी ते अकेले आयो कढ़ि कै॥

पूरब के उत्तर के, प्रबल पछांह हू के,
सब पातसाहन के गढ़ कोट हरते।
'भूषन' कहैं यों अवरंग सों वजीर जीति-
लीबे को पुरतगाल सागर उतरते॥
सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज,
हजरत हम मरिबे को नहिं डरते।
चाकर हैं उजर कियो न जाय नेक पै,
कछु दिन उबरते तो घने काज करते॥

कसत मैं बार बार बैसोई बलन्द होत,
बैसोई सरस रूप समर भरत है॥

'भूषन' भनत महाराज सिवराजमनि,
सघन सदाई जस फूलनि धरत है ॥
बरछी कृपान गोली तीर केते मान जोरा-
वर गोला बान तिनहू को निदरत है ।
तेरो करबाल भयो जगत को ढाल अब,
सोई हाल म्लेच्छन के काल को करत है ॥

झंझा सी दिन को भई संझा सी सकल दिसि,
गगन लगन रही गरद छवाय है ।
चील्ह, गीध, बायस समूह घोर रोर करैं,
ठौर ठौर चारों ओर तम मँडराय है ॥
'भूषन' अँदेस देस-देस के नरेसगन,
आपुस में कहत यों गरब गँवाय है ।
बड़ो बड़बा को, जितवार चहुँधा को दल,
सरजा सिवा को, जानियत इत आय है ॥

साजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है ।
'भूषन' भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी-नद मद गैबरन के रलत है ॥
ऐल फैल खैल भैल खलक में गैल-गैल,
गजन की ठेलपेल सैल उसलत है ।
तारा सो तरनि धूरीधारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है ॥

ऊंचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
ऊंचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं ।
कन्द मूल भोग करैं, कन्द मूल भोग करैं,
तीन बेर खाती ते वै बीन बेर खाती हैं ॥

भूषन सिथिल अंग, भूखन सिथिल अंग,
बिजन डुलातीं ते वै बिजन डुलाती हैं ।
'भूषन' भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं ॥

उतरि पलंग ते न दियो है धरा पै पग,
सोई निस-दिन सगबग चली जाती हैं ।
अति अकुलातीं मुरझातीं न छिपातीं गात,
बात न सोहाती बोले अति अनखाती हैं ॥
'भूषन' भनत बली साहि के सपूत सिवा,
तेरी धाक सुने अरिनारी बिललाती हैं ॥
जोन्ह में न जातीं वे धूपे चली जाती पुनि,
कोऊ करैं घाती कोऊ रोतीं पीटि छाती हैं ॥

सबन के ऊपर ही टाढो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो पंज-जारिन के नियरे ।
जानि गैर मिसिल गुसैल गुसा धारि उर,
कीन्हों न सलाम, न वचन बोले सियरे ॥
'भूषन' भनत महावीर बलकन लागो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे ।
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
स्याह मुख नौरँग, सिपाह-मुख पियरे ॥

केतकी भो राना और बेला सब राजा भये,
ठौर ठौर लेत रस नित्य यह काज है ।
सिगरे अमीर भये कुन्द मकरन्द भरे,
भृंग सो भ्रमत लखि फूल के समाज है ॥
'भूषन' भनत शिवराज देश देशन की,
राखि है बटोरि एक दच्छिन में लाज है ।

तजत मिलिन्द जैसे तैसे तजि दूर भाज्यो,
अलि अवरङ्गजेब, चम्पा सिवराज है ॥
इंद्र जिमि जम्भ पर, बाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुल-राज है ।
पौन वारिवाह पर, सम्भु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है ॥
दावा द्रुम-दंड पर, चीता मृग-झुंड पर,
'भूषन' वितुण्ड पर जैसे मृगराज है ।
तेज तम-अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
यों मलेच्छ बंस पर सेर सिवराज है ॥

कलिजुग जलधि अपार, उद्ध अधरम्म उम्मिमय ।
लच्छनिलच्छ मलिच्छ कच्छ अरु मच्छ मगरचय ॥
नृपति नदी-नद-वृन्द होत जाको मिलि नीरस ।
भनि भूषन सब्र भुम्मि घेरि किन्निय सुअप्प बस ॥
हिन्दुवान पुन्य गाहक-बनिक, तासु निवाहक साहिसुव ।
बर बादवान किरवान धरि, जस जहाज सिवराज तुव ॥

सिंह थरि जाने बिन जावली जंगल भठी,
हठी-गज एदिल पठाय करि भटक्यौ ।
'भूषन' भनत देखि भभरि भगानें सब,
हिम्मति हिए मैं धरि काहुवे न हटक्यौ ॥
साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा,
मदगल अफजलै पंजाबल पटक्यौ ।
ता बिगिर ह्वै करि निकाम निज धाम कहँ,
आकुत महाउत सुआँकुस लै सटक्यौ ॥

कवि कहैं करन, करन-जीत कमनैत,
अरनि के उर माँहि कीन्ह्यो इमि छेव है ।

कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो,
और धराधरन को मेटो अहमेव है ।।
'भूषन' भनत महाराज सिवराज तेरो,
राज-काज देखि कोऊ पावत न भेव है ।
कहरि यदिल, मौज-लहरी कुतुब कहै,
बहरी निज़ाम के जितैया कहैं देव है ।।

छूटत कमान और गोली तीर बानन के,
होत कठिनाई मुरचानहू की ओट में ।
ताहि समै सिवराज हांक मारि हल्ला कियो,
दावा बांधि परा हल्ला बीरवर जोट में ।।
'भूषन' भनत तेरी हिम्मति कहां लौं कहौं,
किम्मति लगि है जाकी भट झोट में ।
ताव दै दै मूंछन कँगूरन पै पांव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परें कोट में ।।

कोप करि चढ़्यौ महाराज सिवराज वीर,
धौंसा की धुकार ते पहार दरकत हैं ।
गिरे कुंभि मतवारे श्रोनित फुहारे छूटे,
कड़ाकड़ छिति नाल लाखों करकत हैं ।।
मारे रन जोम के जवान खुरासान केते,
काटि काटि दाटि दाबें छाती दरकत हैं ।
रन-भूमि लेटे वे चपेटे पठनेटे परे,
रुधिर लपेटे मुगलेटे फरकत हैं ।।

दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी,
उग्ग पर उग्ग नाचे रुंड मुंड फरके ।
'भूषन' भनत बाजे जीत के नगारे भारे,
सारे करनाटी भूप सिंहल लौं सरके ।।

मारे सुनि सुभट पनारेवारे उद्भट,
तारे लागे फिरन सितारे गढ़धर के।
बीजापुर बीरन के, गोलकुण्डा धीरन के,
दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके॥

जिन फन फुतकार उड़त पहार भार,
कूरम कठिन जनु कमल बिदलि गो।
विष ज्वाल ज्वालामुखी लवलीन होत जिन,
जिनते चिकारी मद दिग्गज उगलि गो॥
कीन्हों जिन पान पयपान सो जहान सब,
'भूषन' भनत सिंधुजल थल हलि गो।
खग्ग-खगराज महाराज सिवराज तेरो,
अखिल मुगल-दल-नाग को निगलि गो॥

गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
दावा नाग-जूह पर सिंह सिरताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को॥
'भूषन' अखंड नव खंड महि-मंडल में,
तम पर दावा रवि-किरन-समाज को।
पूरब पछाँह देश दच्छिन ते उत्तर लौं,
जहां पातसाही तहां दावा सिवराज को॥

वेद राखे विदित, पुरान राखे सार युत,
राम नाम राख्यो आनि रसना सुघर में।
हिंदुन की चोटी, रोटी राखी है सिपाहिन की,
कांधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर में॥
मीड़ि राखे मुगल, मरोरि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे, बरदान राख्यो कर में।

राजन की हद्द राखी तेग बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में ॥
गढ़न गँजाय गढ़ घरन सजाय करि,
छांडे केते धरम दुआर दै भिखारी से ।
साहि के सपूत पूत बीर सिवराज सिंह,
केते गढ़धारी किये बन बनचारी से ॥
'भूषन' बखानैं केते दीन्हें बन्दीखाने सेख,
सैयद हजारी गहे रैयत बजारी से ।
महतो से मुगल, महाजन से महाराज,
डांडि लीन्हें पकरि पठान पटवारी से ॥

आपस की फूट ही ते सारे हिन्दुवान टूटे,
टूट्यौ कुल रावन अनीति अति करते ।
पैठिगो पताल बली बज्रधर इरषातें,
टूट्यौ हिरनाच्छ अभिमान चित धरते ॥
टूट्यौ सिसुपाल बासुदेव जू सों बैर करि,
टूट्यौ है महिष दैत्य अधम विचरते ।
राम कर छुवन ते टूट्यौ ज्यों महेसचाप,
टूटी पातसाही सिवराज संग लरते ॥

## छत्रसाल का शौर्य

भुज भुजगेस की वै संगिनी भुजंगिनी सी,
खोदि खोदि खाती दीह दारुण दलन के ।
बखतर पाखरनि बीच धँसि जाती मीन,
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के ॥
रैया राय चम्पति को छत्रसाल महाराज,
'भूषन' सकत को बखान यों बलन के ।

पच्छी परछीने ऐसे परे पर छीने वीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के ॥
हैबर हरट्ट साजि गैबर गरट्ट सम,
पैदर के ठट्ठ फौज जुरी तुरकाने की।
'भूषन' भनत राय चम्पति के छत्रसाल,
रोप्यो रन ख्याल ह्वै कै ढाल हिन्दुवाने की ॥
कैयक हजार एक बार बैरि मारि डारे,
रंजक दगनि मानौं अगिनि रिसाने की।
सैद अफगान सेन सगर सतन लागी,
कपिल सराप लौं तराप तोपखाने की ॥

चाक चक चमू के अचाकचक चहुँ ओर,
चाक सी फिरती धाक चम्पति के लाल की।
'भूषन' भनत पातसाही मारि जेर कीन्हीं,
काहू उमराव ना करेरी करवाल की ॥
सुनि सुनि रीति बिरदैत के बड़प्पन की,
थप्पन उथप्पन की बानि छत्रसाल की।
जंग जीति लेवा ते वै ह्वै कै दाम देवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा महिपाल की ॥

देस दहट्टि आयो आगरे दिली के मेंडे,
बरगी बहरि मानौ दल जिमि देवा को।
'भूषन' भनत छत्रसाल छितिपाल मन,
ताके ते कियो बिहाल जंग जीति लेवा को ॥
खंड खंड सोर यों अखंड महि मंडल में,
मंडो, ते बुन्देलखंड मंडल महेवा को।
दच्छिन के नाह को कटक रोक्यो महाबाहु,
ज्यों सहस्रबाहु ने प्रवाह रोक्यो रेवा को ॥

राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयन्द दिग्गजन हिय साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफ़ताब होत,
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को॥
साज सजि गज तुरी, पैंदर कतार दीन्हें,
भूषन भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को।
और राजा राव एक मन मैं न ल्याऊँ अब,
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को॥

# देव

## जीवन-परिचय

जन्म सं० १७३० इटावा में मृत्यु सं० १८२० संदिग्ध

महाकवि देवदत्त, उपनाम देव, इटावा के रहने वाले थे। इन्होंने सबसे पहले १६ वें वर्ष के आरम्भ में 'भावविलास' बना कर औरंगज़ेब के बड़े पुत्र, काव्यरसिक आज़मशाह को सुनाया, इसके बाद अष्टयाम की रचना की। ये दोनों ग्रंथ शृंगाररस में अनूठे हैं। देव जी भवानीदत्त वैश्य, कुशलसिंह व राजा उदोतसिंह के आश्रय में रहे पर इनके मन का, भोगीलाल के अतिरिक्त, कोई भी आश्रयदाता न मिला। भारत के कई प्रांतों में घूमने से इन्हें बड़ा अनुभव प्राप्त हो गया। इसी अनुभव के फल-स्वरूप इन्होंने 'जाति-विलास' जैसे उत्कृष्ट ग्रंथ की रचना की। आश्रय-दाताओं के प्रति असंतुष्ट रहने के कारण अन्त में इन्हें कुछ विरक्ति-सी हो गई और यह शांत रस में उतर आये। इन्होंने शांत रस में भी कमाल कर दिखाया। 'देव-माया-प्रपंच नाटक', 'वैराग्य-शतक' आदि ग्रंथों को लिख कर यह सिद्ध कर दिया कि विशुद्ध शृंगार के उपासक शांत रस को भी किस सफलता से अंकित कर सकते हैं।

इनके २७ ग्रंथों का पता चला है। जिनमें से ये प्रसिद्ध हैं:—१. भावविलास, २. भवानीविलास, ३. जातिविलास, ४. रसविलास, ५. अष्टयाम, ६. नीतिशतक आदि।

### सार और समीक्षा

देव की कविता शुद्ध व्रजभाषा में है पर कहीं-कहीं इन्होंने शब्दों का तोड़-मरोड़ बुरी तरह से किया है। इनकी कविता में ओज, प्रसाद और माधुर्य खूब पाया जाता है। उक्तियाँ तो बड़ी ही अनूठी हैं।

देव के कवित्त शृंगार और भक्ति भाव को लेकर लिखे गये हैं, बीच-बीच में प्रकृति के सुन्दर चित्र भी अंकित हुए हैं। प्रथम कविता में श्रीकृष्ण के जन्म-समय का वर्णन है। दूसरी कविता में वसन्त को एक नवजात शिशु के रूप में अंकित किया गया है। तीसरी कविता में कहा गया है कि प्रभु को बाहर न ढूंढकर अपने हृदय के विश्वास में देखना चाहिए। चौथी कविता में श्रीकृष्ण के रूप पर मुग्ध हुई एक गोपी का चित्र अंकित किया गया है। पांचवीं कविता में मन की चंचलता चित्रित हुई है। छठी कविता में गोपियों के साथ विहार करते हुए राधिका और कृष्ण का वर्णन है। सातवीं कविता में गोपी-उद्धव संवाद दिया गया है। आठवीं कविता में वियोगिनियों की आँखों को योगिनी बताया गया है। नवीं कविता में मन को उपालम्भ दिया गया है। दसवीं कविता में उत्कृष्ट काव्य-रचना की प्रशंसा की गई है। इस प्रकार देव ने अपनी परिमार्जित एवं प्रवाह-पूर्ण भाषा में अनेक विषयों को प्रतिपादित करने की अनुपम क्षमता प्रकट की है।

## देव-सुधा

**सूनो कै परम पद ऊनो कै अनन्तमद,**
**ऊनो कै नदीस नद इन्दिरा कुरै परी।**
**महिमा मुनीसन की, संपति दिगीसन की,**
**ईसन की सिद्धि ब्रज बीथी बिथुरै परी॥**
**भादों की अँधेरी आधिराति मथुरा के पथ,**
**पाय के संयोग 'देव' देवकी दुरै परी।**
**पारावार पूरन अपार परब्रह्म-रासि,**
**जसुदा के कोरै एक बारही कुरै परी॥**

**डार द्रुम पलना, बिछौना नव पल्लव के,**
**सुमन झँगूला सोहैं तन छबि भारी दै।**
**पवन झुलावै, केकी कीर बहरावैं देव,**
**कोकिल हलावै हुलसावै कर तारी दै॥**

पूरित पराग सों उतारो करे राई लोन,
कंज कली नायिका लतानि सिर सारी दै।
मदन महीप जू को बालक बसन्त, ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै ।।

कथा मैं न कंथा मैं न तीरथ के पंथा मैं न,
पोथी मैं न पाथ मैं न साथ की बसीति मैं।
जटा मैं न मुण्डन न तिलक त्रिपुंडन न,
नदी कूप कुंडन अन्हान दान रीति मैं ।।
पीठ मठ मंडन न कुंडल न कमंडल न,
माला दंड मैं न देव देहरे की भीति मैं।
आपु ही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यो,
पाइए प्रकट परमेसर प्रतीति मैं ।।

जबते कुँवर कान्ह, रावरी कला निधान,
कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी-सी।
तबही तें 'देव' देखी देवता-सी हंसति-सी,
खीझति-सी, रीझति-सी, रूसति, रिसानी-सी ।।
छोही-सी, छली-सी, छोरि लीनी-सी, छकी-सी छीन,
जकी-सी, टकी-सी, लागी थकी थहरानी-सी।
बीधी-सी, बधी-सी, विष बूड़ी-सी, विमोहित-सी,
बैठी बह बकति बिलोकति बिकानी-सी ।।

तेरो कह्यो करि करि जीव रह्यो जरि जरि,
हारी पाँय परि परि तऊ तैं न की सँभार।
ललन बिलोकि 'देव' पल न लगाये तब,
यों कल न दीनी तै छलन उछलनहार ।।
ऐसे निरमोही सों सनेह बाँधि हौं बँधाय,
आपु बिधि बूड़्यो माँझ बाधा सिंधु निराधार।

एरे मन मेरे तैं घनेरे दुख दीन्हे अब,
एकै बार दैके तोहिं मूंदि मारौं एक बार ।।
प्रेम गुन बांधि चित्त चंग सों चढ़ायो उन,
सुनि सुनि बंसी धुनि चंग मुहचंग की ।
मधुर मृदंग सुर उरझि उतंग भई,
रंग परबीन ऐसी बाजनि अभंग की ।।
बधिक बिहंग बधू ब्याधि ज्यों कुरंग नारि,
हनी हैं कुरंगनैनी पारधी न अंग की ।
संग संग डोलत सखीन के उमंग भरी,
अंग अंग उठत तरंग स्याम-रंग की ।।

अंजन सों रंजित निरंजनहिं जानै कहा,
फीको लगै फूल रस चाखै ही जु बौड़ी को ।
तूरज बजाय सूर सूरज को बेधि जाय,
ताहि कहा सबद सुनावत हौ डौढ़ी को ।।
ऊधौ, पूरे पारख हौ परखे बनाय 'देव',
पारही पै बोरौ पैरवैया धार औड़ी को ।
मनु मनिका दै हरि हीरा गाँठि बाँध्यो हम,
तिन्हें तुम बनिज बतावत हौ कौड़ी को ।।

बरुनी बघंबर मैं गूदरी पलक दोऊ,
कोये राते बसन भगोहे भेस रखियाँ ।
बूड़ी जल ही मैं दिन-जामिनिहू जागैं, भौंहैं,
धूम सिर छायो बिरहानल बिलखियाँ ।।
आँसू ज्यों फटिक माल लाल डोरे सेली पैन्हि,
भई हैं अकेली तजि चेली संग सखियाँ ।
दीजिये दरस 'देव' कीजिये संजोगिनि, सु-
जोगिनि ह्वै बैठीं ये बियोगिनी की अँखियाँ ।।

ऐसो जो हौं जानतो कि जैहै तू विषै के संग,
एरे मन मेरे हाथ पाँव तेरे तोरतो।
आजु लौं हौं कत नर-नाहन की नाहीं सुनी,
नेह सों निहारि हारि बदन निहोरतो ॥
चलन न देतो 'देव' चंचल अचल करि,
चाबुक चितावनीति मारि मुंह मोरतो।
भारो प्रेम पाथर नगारो दै गरे सों बाँधि,
राधावर-बिरद के बारिधि में बोरतो ॥

जाके न काम न क्रोध विरोध, न लोभ छुवै नहि छोभ को छाँहौं।
मोह न जाहि रहै जग बाहिर, मोल जवाहिर तौ अति चाहौं ॥
बानी पुनीति ज्यों देवधुनी, रस आदर सारद के गुन गाहौं।
सील-ससी सबिता-छबिता, कविताहि रचै कवि ताहि सराहौं ॥

# आलम

## जीवन-परिचय

रचना-काल--सं० १७४० के लगभग

यह जाति के ब्राह्मण थे, पर शेख नाम की रँगरेजिन के प्रेम में फँसकर बाद में मुसलमान हो गये, और उसके साथ विवाह करके रहने लगे। आलम को शेख से जहान नामक एक पुत्र भी हुआ। यह औरंगज़ेब के दूसरे बेटे मुअज्ज़म के आश्रय में रहते थे, जो बहादुरशाह के नाम से गद्दी पर बैठा। अतः आलम का कविता-काल संवत् १७४० से संवत् १७६० तक माना जा सकता है। इनकी कविताओं का एक संग्रह 'आलमकेलि' के नाम से निकला है। इस पुस्तक में आये पद्यों के अतिरिक्त इनके और बहुत-से सुन्दर और उत्कृष्ट पद्य अन्य ग्रंथों में संगृहीत मिलते हैं और लोगों के मुख से सुने जाते हैं।

शेख रँगरेजिन भी अच्छी कविता करती थी। आलम के साथ प्रेम होने की विचित्र कथा प्रसिद्ध है। कहते हैं कि आलम ने एक बार उसे पगड़ी रंगने को दी जिसकी खूँट में भूल से कागज़ का चिट बँधा चला गया। उस चिट में दोहे की यह आधी पंक्ति लिखी थी "कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि छीन"। शेख ने दोहा इस तरह पूरा करके "कटि को कंचन काटि विधि कुचन मध्य धरि दीन"। उस चिट को फिर ज्यों-का-त्यों पगड़ी की खूँट में बाँधकर लौटा दिया। उसी दिन से आलम शेख के पूरे प्रेमी हो गये, और अन्त में उसके साथ विवाह कर लिया। शेख बहुत ही चतुर और हाज़िरजवाब स्त्री थी।

एक बार शाहज़ादा मुअज़्ज़म ने हँसी में शेख से पूछा कि आलम की औरत आप ही हैं? शेख ने चट उत्तर दिया--"हां जहांपनाह! जहान

की माँ मैं ही हूँ !" आलमकेलि में बहुत से कवित्त शेख के रचे हुए हैं। आलम के कवित्त-सवैयों में भी बहुत-सी रचना शेख की मानी जाती है। जैसे नीचे लिखे कवित्त में चौथा चरण शेख का बनाया कहा जाता है :—

प्रेमरँग-पगे जगमगे जगे जामिनि के, जोबन की जोति जगि जोर उमगत हैं।
मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत हैं, झूमत हैं, झुकि झुकि झाँपि उघरत हैं।
आलम सो नवल निकाई इन नैनन की, पाँखुरी पदुम पै भँवर फिरकत हैं।
चाहत हैं उड़िवे को, देखत मयंक मुख, जानत हैं रैनि तातें ताहि में रहत हैं।

श्री डा० सरनदास भनोत ने आलम की स्याम-स्नेही नामक एक अज्ञात पुस्तक को संपादित कर प्रकाशित करवाया है। इसकी भूमिका में आपने प्रबल प्रमाणों से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि सम्राट् अकबर का समकालीन "माधवानल कामकंदला" का लेखक आलम और आलमकेलि के रचयिता आलम यह दोनों एक ही हैं। तथा आलम के ब्राह्मण होने व शेख रँगरेजिन के साथ विवाह की कथा कल्पित है।

## सार और समीक्षा

आलम रीतिबद्ध रचना करने वाले कवि नहीं थे। ये प्रेमोन्मत्त कवि थे, और अपनी तरंग के अनुसार रचना करते थे। इससे इनकी रचनाओं में हृदय-तत्त्व की प्रधानता है। "प्रेम की पीर" या "इश्क का दर्द" इनके एक-एक वाक्य में भरा पाया जाता है। उत्प्रेक्षाएँ भी इन्होंने बड़ी अनूठी और बहुत अधिक कही हैं। शब्दवैचित्र्य, अनुप्रास आदि की प्रवृत्ति इनमें कहीं नहीं पाई जाती। श्रृंगार रस की ऐसी उन्मादभरी उक्तियाँ इनकी रचना में मिलती हैं कि पढ़ने और सुनने वाले लीन हो जाते हैं। यह तन्मयता सच्ची उमंग से ही सम्भव है। रेख़ता या उर्दू भाषा में भी इन्होंने कवित्त कहे हैं। भाषा भी इनकी परिमार्जित और सुव्यवस्थित है। पर उसमें कहीं कहीं "कीन दीन जौन" आदि अवधी या पूर्वी हिन्दी के प्रयोग भी मिलते हैं। प्रेम की तन्मयता की दृष्टि से आलम की गणना रसखान और घनानन्द की कोटि से कम नहीं।

## आलम-केलि

जाके जोग जुगिया जुगत ही सों जोग जागैं,
भगत संजोग बसि अलख अलेख है ।
सनक सनन्द सनकादिक सिव मुनि जन,
सारद औ' नारद हू के लगत निमेष हैं ॥
'आलम' सुकवि आनि ब्रज नर भेष धरचो,
ध्यावत हौ जाको ताके नाहिं रूप रेख है ।
निगम ते अगम सुगम करि जान्यो तुम,
निरगुन ब्रह्म सोई सगुन के भेष है ॥

*　　*　　*

सोई स्याम सुनहु अगाध कै समाधि ध्यावैं,
सोई स्याम रैनि जामैं नित ही समाति है ।
सोई स्याम पलक लगें तें स्यामताई ही मैं,
तनमय होत तब कत पछताति है ॥
'आलम' सुकवि कहै सोई स्याम बन घन,
तारनु तें न्यारे नहीं कत बिल्लाति है ।
तुम ही मैं स्याम तुम स्याम ही मैं रमि रही,
बादि ही बिकल विहवल भई जाति है ॥

*　　*　　*

कर्म को बियापी को है धर्म कै समाधि ध्यावै,
श्रमु के सुनावै सु तौ ब्रह्म ही के नाम को ।
कैसो जोग जुगति संजोग कैसो कहा जोग,
ज्ञान हू की गाँठि कैसी ध्यानन को धाम को ॥
'आलम' सुकवि इहाँ बृन्दावनचन्द कान्ह,
चित्त ये चकोर कहौ आन बिसराम को ।
जहाँ रस परस सरस मुरली की घोर,
तहाँ ऊधौ सगुन निगुन कौन काम को ॥

*　　*　　*

रुचिर बरन चीरु चन्दन चरचि सुचि,
सरद् को चन्द चाहि चितहिं धरत हैं।
विविध बिलास बसि रास ब्रजपति प्यारे,
तेई ब्रज बतियां उचित उचरत हैं॥
'आलम' सुकवि अब वैसे कान्ह ऐसे भये,
उतहि लुभाने किधौं इतही ढरत हैं।
मधुबन बसत मधुर मुरली की धुन,
मधुप कबहुँ माधौ सुरति करत हैं॥

* * *

पतियां पठाये अस्रुपात तौ भले पै होत,
बतियनि बिरह बितैबो कछु हांसी है।
'आलम' निरास बैन सुने कौन जोरें नैन,
हियो को कठिन ऐसो कौन ब्रजबासी है॥
ऊधो ये सँदेसे जैये वाही चितचोर पै लै,
आपुन कठिन भये और को बिसासी है।
यहां लौ न आवै नैकु बांसुरी सुनावै आनि,
बिनसैगो कहा आये जो पै अविनासी है॥

* * *

अँखियां भली जू ऐसे अँसुवनि धारें, नातो
धारा पल छूटे तिहूं देस न समाति है।
औधि है जू धूम की उसांस रूंधि राखी है सु,
नेकु लेत द्यौसहू अँध्यारी होति राति है॥
'आलम' संताप स्वेद सींचिबो उधार कौ हूं,
झूरी ह्वै के देह फिर खेहें ज्यों उड़ाति है।
छाती पै सराहौं बरु दीया की सी भांति ऊधौ,
पाती लिखै लेखनी ज्यों बाती बरी जाति है॥

* * *

तरनिजा तट बंसीबट कुंज पुंज बीथी,
बन घन जहां तहां आनन्दुपयोगी हैं ।
सोई रहे ध्यान ऊधौ ज्ञान कौन काज कीजै,
ये तो ब्रजबासी ब्रजराज के वियोगी हैं ।।
'आलम' सुकवि कहै तन बीच कान्ह छबि,
जोग दैन आये तुम काह हम जोगी हैं ।
जोग तौ सिखैये ताहि जोग की जुगति जानै,
जोग को न काज हम बंसी रस भोगी हैं ।।

* * *

चाहती सिंगार तिन्हें सिंगी सो सगाई कहा,
औधि की है आस तौ अधारी कैसे गहिये ।
बिरह अगाध तहां सुन्नि की समाधि कौन
जोग काहि भावै जु वियोग दाह दहियै ।।
'सेख' कहै मैन-मुद्रा मोहन जू लाये बन,
मुद्रा लाओ काननि सुने ई सूल सहिये ।
लागैं लग नेंकहूं कहूं जो बैरी नीरो होय,
ऊधौ एते बीच की बिचारि बात कहिये ।।

* * *

गांसी जाहि सूल ताहि हांसी न हँसाये आवै,
पासी परे पेम सुनि सांसी कहियत है ।
मन गये मानस मरूरै मारि सांस लेत,
परगट नेंसकु उदासी कहियतु है ।।
'सेख' कहै सोइ गति हरि बिछुरत ऊधौ,
बावरे विकल ब्रजबासी कहियतु है ।
सुर बांसी बेधत बिसारे सर व्याधि सोई,
तातें बड़ो बधिक बिसासी कहियतु हैं ।

* * *

बारै तें न पलक लगत बिनु सांवरे ते,
बावरे अजान ऊधो भले उपदेस हैं।
ता दिन ते बन सूनो घरु है दहत दूनो,
तारनि में ज्योति नहीं जटा भये केस हैं॥
'आलम' बिहात छिन जनो जात कोटि दिन,
कौन रैन की समाई सुरति न नैस हैं।
हम हू ते स्याम दूरि स्याम हू ते हम दूरि,
वै तो आछे काछे स्याम सखि मैले भेस हैं॥

* * *

बूझि कै अबूझ ऊधौ होत ऐसी बूझियैरे,
जो पै ऐसी बूझ तौ अबूझ किन बूझौ जू।
झखत झुरत झखकेतऊ खिझावै झुकि,
तुम झुकवत झूठो जूझ कौन जूझै जू॥
राजिव नयन मेरे 'आलम' रहे कै ध्यान,
रीझ की रहनि में अबूझ कहा रूझै जू।
प्रगटि जुगति जाहि जीजियतु ऐसी सुनि,
भोग की भुगति पायें जोग काहि सूझै जू॥

* * *

सीत रिपु भीत भई छाती राती ताती तई,
ऐसे ताप, तिय तन तये हैं न तवैंगे।
'आलम' अनिल इतराय कै कलिन मिलि,
दीन्हों है कलेस सुधि आय दूनो दवैंगे॥
ग्रीष्म ते ऊषम है विषम अषाढ़ ऊधौ,
माधौ जो न आये मन भ्रमर ज्यों भवैंगे।
बधिवे को बूंदनि बियोगिनी को बीनि बीनि,
आये बैरी बादर बिसासी बिस बवैंगे॥

* * *

अरबिन्द पुंज गुंज डोर भौंर ही ब्रती,
हलोर ओर थोर ज्यों तिसा चलत चंदनी ।
निकुंज फूल मौल बेलि छत्र छांह से धरे,
तटी कलोल कोक पुंज सोक संक दन्दनी ।।
'आलम' कबित्त चित्त रास के विलास ते,
प्रकास बन्दना करी बिलोकि बिस्व-बन्दनी ।
समीर मन्द मन्द केलि कन्द दोष दंद यो,
अनन्द नंदनंद के बिराजे हंसनन्दनी ।।

* * *

लता प्रसून डोल बोल कोकिला अलाप केकि,
लोल कोक कंठ त्यों प्रचंड भृंग गुंज की ।
समीर बास रास रंग रास के बिलास बास,
पास हंसनन्दिनी हिलोर केलि पुंज की ।।
'आलम' रसाल बन गान ताल काल सो,
बिहंग बाय बेगि चालि चित्त लाज लुंज की ।
सदा बसंत हंत सोक ओक देव लोक ते,
विलोकि रीझि रही पांति भांति सों निकुंज की ।।

* * *

जौंहीं भौंह भीजी आंखि ताकि हैं जु तीजिये से,
जीबी कहे ज्याइहै अमर पद आइ लै ।
अम्बर पखारे ते दिगम्बर बनैहै तोहि,
छलक छुआये गज छाल तन छाइ लै ।।
'सेख' कहै श्रापी कोऊ जैनी है कि जापी बड़ो,
पापी है तो नीर पैठि नागन लवाय लै ।
अंग बोरि गंग में निहंग ह्वै कै बेगि चलि,
आगे आउ मैल धोइ बैल गैल लाइ लै ।।

* * *

नीके न्हाइ धोइ धूरि पैठो नेकु बैठो आनि,
धूरि जटि गई धूरिजटी लौं भवन में।
पैन्हि पैठो अम्बर सु निकस्यो दिगम्बर ह्वै,
दृग देखो भाल में अचम्भो लाग्यो मन में॥
जैसो हर हिमकर धरे औ गरे गरल,
भारी घरु डरु बरु छाडयो एक खन में।
देखे दुति ना परत. पाप रेते पा परत,
सापरे ते सुरसरि सांप रेंगे तन में॥

* * *

गोरख सुढौरी लिये संभु ताको मत दिये,
आपुन अकेलो संग गौरी तिहि लोग ना।
बरुनि विभूति बार बार लै लै मुख लावै,
उरहू लगावै पुनि भावै कछु भोग ना॥
अधारी लै धौरे धरी संपति धतूरा भरी,
वृषभ लै चलै जाय कोऊ ताको सोग ना।
जटा छिटकाये छबि छोनी में बिछाये छाल,
बासुकी बिरागी बाकी टेक बैठो जोग ना॥

* * *

भौन के दरस पुन्य-भौन मेरे नेरे आयो,
छत्र-छांह परसत छत्रनि सों छयो हौं।
मंगला के मंगल तें मंगल अनेग भये,
हिंगलाज राखी. लाज याहि काज नयो हौं॥
सेषमति 'सेख' ही सुसेष की सी दीनी तुम,
रावरे सिखाये सिख ढिग आनि लयो हौं।
दुर्गा देवी तेरे इ दया ते दुर्ग नांघि आयों,
पारबती तुम्हैं सुमिरत पार भयो हौं॥

* * *

पालन खेलत नन्द ललन छलन बलि,
गोद लै लै ललना करति मोद गान हैं ।
'आलम' सुकवि पल पल मैया पावै सुख,
पोषति पीयूष सु करत पय पान हैं ॥
नन्द सों कहत नन्द रानी हो महर ! सत-
चन्द की सी कलनि बढ़त मोरे जान हैं ।
आह देख आनँद सो प्यारे कान्ह आनन में,
आन दिन आन घरी आन छबि आन हैं ॥

* * *

दैहौं दधि मधुर धरनि धरचो छोरि खैहैं,
धाम ते निकसि धौरी धेनु धाइ खोलि हैं ।
धौरि लौटि ऐहैं लपटैहैं लटकत ऐहैं,
सुखद सुनैहैं बैन बतियां अमोलि हैं ॥
'आलम' सुकवि मेरे लालन चलन सीखैं,
बलन की बांह ब्रज-गलिनि में डोलिहैं,
सुदिन सुदिन दिन ता दिन गिनैंगी माई,
जा दिन कन्हैया मोसों मैया कहि बोलिहैं ॥

* * *

# घनानन्द

## जीवन-परिचय

जन्म सं० १७४६ के लगभग                मृत्यु सं० १८१७ में

घनानन्द या आनन्दघन का जन्म सं० १७४६ के लगभग और मृत्यु अहमद अब्दाली के दूसरे आक्रमण में सं० १८१७ में हुई। ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह के मीर मुन्शी थे। इनका सुजान नामक वेश्या से प्रेम था। ये साहित्य और संगीत दोनों कलाओं के पारंगत रसिक-शिरोमणि भावुक भक्त थे। अन्तिम दिनों में सुजान की कृतघ्नता से दुःखी हो वृन्दावन में जाकर ये भक्तिभाव-भरी कविता करने लगे। अहमदशाह अब्दाली के सिपाहियों ने इन्हें घेर कर 'जाजर' (ध०-धन) कह कर रुपये माँगे। इन्होंने जेर शाह को उलट कर ऐसा कहते हुए तीन मुट्ठी धूल फेंक दी। इस पर क्रुद्ध हो सिपाहियों ने इनका बायां हाथ काट डाला। इनकी १. सुजानहित, २. कृपाकन्द निबंध, ३. वियोग बेली, ४. इश्क-लता आदि पुस्तकें प्राप्त हो चुकी हैं। सुजान के दुर्व्यवहार से इनके भावुक हृदय को बड़ी ठेस पहुँची। तभी से ये विरह-वेदना के गीतों में ही तन्मय रहते और अपनी कविता में सुजान हीरो को संबोधित करते। यह सुजान शब्द श्रृंगार रस की कविताओं में नायक के लिए और भक्ति-संबंधी रचनाओं में कृष्ण के लिए प्रयुक्त हुआ है।

### सार और समीक्षा

इनकी सी विशुद्ध, सरस और शक्तिशालिनी व्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही हैं। ये वियोग श्रृंगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं। "प्रेम की पीर" को लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम-मार्ग का ऐसा प्रवीण

और धीर पथिक तथा ज़बांदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ। अतः इनके सम्बन्ध में निम्नलिखित उक्ति बहुत ही संगत है—

नेही महा, ब्रजभाषा प्रवीन औ' सुन्दरताहु के भेद को जानै।
योग वियोग की रीति में कोविद, भावना भेद स्वरूप को ठानै॥
चाह के रंग में भीज्यो हियो, बिछुरे मिले प्रीतम सांति न मानै।
भाषा प्रवीन सुछंद सदा रहै सो धन जू के कवित्त बखानै॥

इनकी कविता भावपक्ष-प्रधान है। कोरे विभाव पक्ष का चित्रण इनमें कम मिलता है। संयोग का भी कहीं-कहीं बाह्य वर्णन मिलता है, पर उसमें भी प्रधानता बाहरी व्यापारों या चेष्टाओं की नहीं है, हृदय के उल्लास और लीनता की ही है।

प्रेम की अनिर्वचनीयता का आभास घनानन्द ने विरोधाभासों के द्वारा दिया है। उनके विरोधमूलक वैचित्र्य की प्रवृत्ति का कारण यही समझना चाहिए।

यद्यपि इन्होंने संयोग और वियोग दोनों पक्षों को लिया है, पर वियोग की अंतर्दशाओं की ओर ही दृष्टि अधिक दी है। इसी से इनके वियोग सम्बन्धी पद्य ही प्रसिद्ध हैं। वियोग-वर्णन भी अधिकतर अंतर्वृत्ति-निरूपक है, बाह्यार्थ-निरूपक नहीं। घनानन्द ने न तो बिहारी की तरह विरह-ताप को बाहरी मान से मापा है, न बाहरी उछल-कूद दिखाई है। जो कुछ हलचल है वह भीतर की है, बाहर से वह वियोग प्रशान्त और गम्भीर है; न उसमें करवटें बदलना है, न सेज का आग की तरह तपना है, न उछल-उछल कर भागना है। उनकी तो मौन पुकार है।

यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था वैसा और किसी कवि का नहीं। भाषा मानों इनके हृदय के साथ जुड़ कर ऐसी वशवर्त्तिनी हो गई थी कि ये उसे अपनी अनूठी भावभंगी के साथ-साथ जिस रूप में चाहते थे उस रूप में मोड़ सकते थे। इनके हृदय का

योग पाकर भाषा को नूतन गति-विधि का अभ्यास हुआ और वह पहले से कहीं अधिक बलवती दिखाई पड़ी। जब आवश्यकता होती थी तब ये उसे बँधी प्रणाली पर से हटा कर अपनी नई प्रणाली पर ले जाते थे। भाषा की पूर्व अर्जित शक्ति से ही काम न चला कर इन्होंने उसे अपनी ओर से नई शक्ति प्रदान की है। घनानन्द जी उन विरले कवियों में हैं जो भाषा की व्यंजना बढ़ाते हैं। अपनी भावनाओं के अनूठे रूप-रंग की व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करने वाला हिन्दी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ। भाषा के लक्षक और व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी।

लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी हिन्दी कवियों ने उसके भीतर बहुत ही कम पैर बढ़ाया। एक घनानन्द ही ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने इस क्षेत्र में अच्छी दौड़ लगाई। लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग-वैचित्र्य की जो छटा इनमें दिखाई पड़ी, खेद है कि वह फिर पौने दो सौ वर्ष पीछे जाकर आधुनिक काल के उत्तरार्द्ध में, अर्थात् वर्तमान काल की नूतन काव्य-धारा में ही, अभिव्यंजनावाद के प्रभाव से कुछ विदेशी रंग लिये प्रकट हुई।

## सुजान-सागर

**नेही महा, ब्रजभाषा-प्रवीन औ सुन्दरताइ के भेद कों जानैं।**
**जोग वियोग की रीति में कोविद, भावना-भेद, स्वरूप कों ठानैं॥**
**चाह के रंग में भींज्यो हियो, बिछुरे मिले प्रीतम सान्ति न मानैं।**
**भाषा प्रवीन, सुछंद सदा रहै, सो घनजू के कवित्त बखानैं॥**

**प्रेम सदा अति ऊंचो लहै सु कहै इहि भांति की बात छकी।**
**सुनिकैं सब के मन लालच दौरैं, पै बौरे लखैं सब बुद्धि चकी॥**
**जग की कविताई के धोखे रहैं, ह्याँ प्रवीननि की मति जाति जकी।**
**समुझै कविता घनआनँद की, हिय आँखिन नेह की पीर तकी॥**

**जा हित मात कौ नाम जसोदा, सुबंस को चन्द्रकला-कुलधारी।**
**सोभा-समूहमई घनआनँद, मूरति रंग अनंग जिवारी॥**

जान महा सहजै रिझवार, उदार-बिलास, सु रासबिहारी ।
मेरो मनोरथ हू पुरवौ तुम हीं मो मनोरथ पूरनकारी ॥

मेरोई जीव जो मारतु मोहिं, तौ प्यारे, कहा तुमसों कहनौ है ।
आंखिनहूँ यहि बानि तजी, कछु ऐसोइ भोगनि कौ लहनौ है ॥
आस तिहारियै ही घनआनँद, कैसे उदास भये रहनौ है ।
जानि कै होत इतै पै अजान जो, तौ बिन पावक ही दहनौ है ॥

इन बाट परी सुधि रावरे भूलनि, कैसे उराहनौ दीजिए जू ।
इक आस तिहारी सों जीजै सदा, घन चातक की गति लीजिए जू ॥
अब तों सब सीस चढ़ाय लई, जु कछू मन भाई सु कीजिए जू ।
घनआनँद, जीवन-प्रान सुजान, तिहारियै बातनि जीजिए जू ॥

जिन आँखिन रूप चिन्हारि भई, तिनकों नित ही दहि जागनि है ।
हित-पीर सों पूरित जो हियरो, फिरि ताहि कहां, कहु, लागनि है ?
घनआनँद, प्यारे सुजान सुनो, जियराहि सदा दुख दागनि है ।
सुख में मुखचन्द बिना निरखे, नख तें सिख लौं बिख पागनि है ॥

जीव की बात जनाइए क्योंकरि, जान कहाय अजाननि आगौ ।
तीरन मारिकै पीर न पावत, एक-सो मानत रोइबौ रागौ ॥
ऐसी बनी घनआनँद, आनि जू, आनन सूझत सो किन त्यागौ ।
प्रान मरैंगे, भरैंगे बिथा, पै अमोही सों काहू कौ मोह न लागौ ॥

किंसुक पुंज-से फूलि रहे, सु लगी उर दौ जु बियोग तिहारे ।
मातो फिरै न गिरै अबलानि पै, जान मनोज यौं डारत मारे ॥
ह्वै अभिलाखनि पातनि पात, कढ़े हिय सूल उसासनि डारे ।
है पतझार बसंत, दुहूँ घनआनँद एक ही बार हमारे ॥

जिनकों नित नीके निहारति हों, तिनकों अँखियाँ अब रोवति हैं ।
पल पांवड़े पाइनि चाइनि सों, अँसुवानि की धारनि धोवति हैं ॥
घनआनँद जान सजीवनि कों, सपने बिन पायेइ खोवति हैं ।
न खुली मुँदी जानि परैं, दुख ये, कछु हाइ जगे पर सोवति हैं ॥

मो बिन जो तुम्हें और रुची तौ रुचै,न तुम्हें बिन मोहि जियौ जू ।
सूल भयो गुन यों जिहि अंग को, दीप सों बारि बियोग दियौ जू ॥
काह कहौं घनआनँद प्यारे, इतौ हठ कौन पै आपु लियौ जू ।
हाय! सुजान सनेही कहाइ क्यौं, मोह जनाइ कैं द्रोह कियौ जू ॥

पर काजहिं देह कों धारे फिरौ, 'परजन्य' जथारथ ह्वै दरसौ ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ, सबहीं बिधि सज्जनता सरसौ ॥
घनआनँद जीवन-दायक हौं, कछु मेरियौ पीर हियें पारसौ ।
कबहूं वा बिसासी सुजान के आंगन, मो अँसुवानि कों लै बरसौ ॥

धुनि पूरि रहै नित काननि में, अजु कों उपराजिबोई-सी करै ।
मनमोहन गोहन जोहन के, अभिलाख समाजिबोई-सी करै ॥
घनआनँद, तीखियै ताननि सों, सर-से सुर साजिबोई-सी करै ।
कित तैं यह बैरिनि, बाँसुरिया, बिन बाजेइ बाजिबोई-सी करै ॥

पहिले अपनाय सुजान सनेह सों, क्यों फिरि नेह कों तोरिए जू ।
निरधार अधार दै धार मँझार, दई गहि बांह न बोरिए जू ॥
घनआनँद, आपके चातक कों, गुन बांधिकैं मोह न छोरिए जू ।
रस प्याय कैं ज्याय बढ़ाय कैं आस,बिसास में यों विष घोरिए जू ॥

एरे बीर पौन, तेरो सबै ओर गौन, बारी,
तोसों और कौन मनों ढरकौंहीं बानि दै ।
जगत के प्रान ओछे-बड़े तो समान,
घनआनंद निधान सुखदानि दुखियानि दै ॥
जान उजियारे गुनभारे अन्त मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै ।
बिरह-बिथा की मूरी आंखिन में राखौं पूरि,
धूरि तिन पाइन की हाहा नैकु आनि दै ॥

राति-द्यौस कटक सजेही रहै, दहै दुख,
कहा कहौं, गति या बियोग बज्रमारे की ।

लियो घेरि औचक अकेली कै बिचारौ जीव,
कछू न बसाति यों उपाव बलहारे की ॥
जान प्यारे, लागौ न गुहार तौ जुहार करि,
जूझकैं निकसि टेक गहैं पन धारे की।
हेत-खेत धूरि चूर-चूर ह्वै मिलैंगी तब,
चलैंगी कहानी घन आनँद तिहारे की ॥

इन्दीबर-दलनि मिलाइ सौनजुही गुही,
सुही माल हाल रूप गुन न परै गनै।
पीरी ये पिछौरी छोर सीस पै उलटि राखैं,
केसर विचित्र अंग रंग भाव सों सनै ॥
मुरली में गौरी धुनि टेरी घनआनँद ह्वै,
तेरे द्वार टहकनि ऊधम घने ठनै।
हा हा हे सुजान ! आजु दीजै प्रान-दान नैकु,
आवत गुपाल देखि लीजै बन तें बनै ॥

रसिक रँगीले, भली भांतिन छबीले,
घन आनँद, रसीले भरे महा सुखसार हैं।
कृपा धन धाम स्याम सुन्दर सुजान, मोद—
मूरति सनेही बिना बूझे रिझवार हैं ॥
चाह-आलबाल, औ अबांह के कलपतरु,
कीरति-मयंक, प्रेम-सागर अपार हैं।
नित हितसंगी, मनमोहन त्रिभंगी मेरे,
प्राननि-अधार नन्दनन्दन उदार हैं ॥

आँखिन को जो सुख निहारे जमुना के हेतु,
तो सुख बखाने बनत देखिबेई है।
गौर-स्याम-रूप-ओदरस है दरस जाको,
गुपुत प्रगट भावना बिसेखिबेई है ॥

जुग कूल सरस सलाका दीठि परत हीं,
अंजन सिंगाररूप अवरेखिबेई हैं ।
आनँद के घन माधुरी की झर लागि रहै,
तरल तरंगनि की गति लेखिबेई हैं ।।

राधानवजोबन-बिलास को बसंत जहां,
अंग-अंग रंगन-बिकास ही की भीर है ।
प्यारो बनमाली घनआनँद सुजान सेवै,
जाकों देखि काम के हिये में नाहिं धीर है ।।
सुरनि समाज साज कोकिल कुहूक राजै,
सासन अनेक सुख सौरभ समीर है ।
स्वेद मकरन्द औ मनोरथ मधुप पुंज,
मंजु वृन्दावन देस जमुना के तीर है ।।

तबतौ तुम दूरहिं तें मुसुकाय,
बचाय कैं ओर की दीठि हँसे ।
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी,
रचाय कैं नैननि में सरसे ।।
अबतौ उर माहिं बसाय कैं मारत,
एजू बिसासी, कहां धों बसे ?
कछु नेह निबाह न जानत हे,
तौ सनेह की धार में काहे धँसे ।।

आपुहि तें मन हेरि हँसे,
तिरछे करि नैननि नेह के चाव में ।
हाय दई ! सु बिसारी दई सुधि,
कैसी करौं, सो कहो, कित जावँ में ।।
मीत सुजान अनीति कहा,
यह ऐसी न चाहिए प्रीति के भाव में ।

मोहनि मूरति देखिबे कों,
तरसावत हौ बसि एक ही गांव में ।।
दृग फेरिए ना अनबोलिए सो,
सर से ह्वै लगे कत जीजिए जू ।
रसनायक, दायक हौ रस के,
सुखदाई ह्वै दुःख न दीजिए जू ।।
घनआनँद प्यारे सुजान ! सुनौ
बिनती मन मानिकैं लीजिए जू ।
बसिकैं इक गांव में एहो दई !
चित्त ऐसौ कठोर न कीजिए जू ।।

सदा कृपानिधि हौ, कहा कहौं सुजान हौ,
अमानि मान-दानि हौ, समान काहि दीजिए ।
रसालसिंधु प्रीति के, भरे खरे प्रतीति के,
निकेत नीति रीति के सुदृष्टि देखि जीजिए ।।
ठगी लगी तिहारियै, सु आप त्यों निहारिए,
समीप ह्वै बिहारिए, उमंग रंग भीजिए ।
पयोद मोद छाइए, बिनोद को बढ़ाइए,
बिलम्ब छांड़ि आइए, किधौं बुलाइ लीजिए ।।

# महाकवि पद्माकर

## जीवन-परिचय

जन्म सं० १८१० जिला बाँदा में मृत्यु सं० १८९० कानपुर में

आपका जन्म सं० १८१० में जिला बाँदा में हुआ था और मृत्यु कानपुर में गंगाजी के तट पर सं० १८९० में। इनके पिता का नाम मोहनलाल भट्ट था। वे भी बड़े प्रतिभाशाली कवि थे। ये तैलंग ब्राह्मण थे। रीतिकाल के कवियों में इनका अपना स्थान है। ये व्रजभाषा के अन्तिम सहृदय कवि थे।

इन्होंने अपनी प्रतिभा के कारण कई राज-दरबारों में प्रतिष्ठा प्राप्त की। आप कुछ दिन बाँदा के हिम्मत बहादुरसिंह के यहाँ रहे और उन्हीं के नाम पर 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली' लिखी। सितारा-नरेश राघोवा के यहाँ से आपको एक हाथी, एक लाख रुपया और १० ग्राम मिले। इसके पश्चात् ये जयपुर-नरेश सवाई जगतसिंह की सभा में पहुँचे। उसी समय महाराज ने उन्हें एक 'नायिका-भेद' का ग्रंथ बनाने की अनुमति दी। महाराज की आज्ञानुसार उन्हीं के नाम पर पद्माकर जी ने अपना प्रसिद्ध 'जगत्‌विनोद' नामक ग्रंथ बनाया। कहते हैं कि इस ग्रन्थरत्न की बनवाई के इन्हें एक लाख रुपये मिले थे। संभवतः 'पद्माभरण' नाम का अलंकार ग्रन्थ भी वहीं पर रचा गया था।

फिर इनकी ख्याति सुन कर ग्वालियर-नरेश दौलतराव सिंधिया की उनसे मिलने की प्रबल इच्छा हुई। उस समय पद्माकर कुष्ठरोग-ग्रस्त हो गये थे और जयपुर से आगरे आ गये थे। महाराज ने सवारी भेज कर इन्हें बुलाया। अन्धे, कोढ़ी आदि रोगियों को देखना राजा के लिए शास्त्र में निषिद्ध है। मंत्रियों ने निवेदन किया कि महाराज!

परम्परा से ऐसी रीति चली आई है कि ऐसे रोगी राजा के समीप नहीं आने पाते। इसलिए पद्माकर जी को दरबार में न आने देना चाहिए। महाराज ने कहा––अच्छा, मैं पद्माकर को न देखूँगा; इसलिए बीच में परदा डाल दिया जाय। वे भीतर से अपनी कविता पढ़ें। मैं उनके मुख से उनकी कविता सुनना चाहता हूँ। वैसी ही व्यवस्था की गई। एक कोठी में पद्माकर बैठाये गये, दरवाजे में परदा डाल दिया गया और बाहर दालान में महाराज और उनके सभासद बैठे। आज्ञा होते ही पद्माकर ने अपने कविता-समुद्र को तरंगित किया। जैसे ओज-भरे इनके कवित्त होते थे, वैसे ही बलपूर्ण इनका पढ़ना भी था। इन्होंने महाराज की प्रशंसा में ऐसे भड़कीले छन्द पढ़े कि महाराज मुग्ध हो गये। उनसे न रहा गया और झट परदा हटा भीतर जाकर पद्माकर को गले लगा लिया।

कुछ दिन पद्माकर बड़े सम्मान के साथ ग्वालियर में रहे। उन्होंने महाराज की आज्ञा से 'आलीजा-प्रकाश' नामक नायिका-भेद का ग्रन्थ भी बनाया। इस ग्रन्थ में महाराज की प्रशंसा के तथा अन्य विषयों के कुछ स्फुट छन्दों को छोड़कर प्रायः सभी छन्द 'जगत्‌विनोद' के रक्खे गये हैं। तत्पश्चात् जब उन्हें नाना प्रकार की औषध और यत्न करने पर भी कुष्ठ का आराम न हुआ तो उन्होंने अपना शेष जीवन गंगातट पर रह कर व्यतीत करना विचारा। जब वह कानपुर के समीप गंगा की शरण में जा रहे थे तो मार्ग में अपने पापों को सम्बोधन करके यह कविता पढ़ते जाते थे––

जैसे तैं न मोसों कहूं नेकहू डरात हुतो,
तैसे अब तोसों हौं हूं नेकहू न डरिहौं।
कहै पद्माकर प्रचंड जो परैगो तौ,
उमंडि करि तोसों भुजदंड ठोकि लरिहौं॥
चलो-चलु चलो-चलु विचलु न बीच ही तें,
कीच बीच नीच तो कुटुम्ब को कचरिहौं।
एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि,
गंगा की कछार में पछार छार करिहौं॥

कहते हैं, उसी समय से उनका रोग घटने लगा और कुछ दिन गंगा-जल सेवन करने के उपरान्त सर्वथा जाता रहा और वे नीरोग हो गये। उन्होंने गंगा की स्तुति में 'गंगालहरी' नामक कवित्तों का सुन्दर ग्रन्थ बनाया है। तदुपरान्त उन्होंने कानपुर में गंगातट पर अपना मकान बनवा लिया और वहीं रहने लगे। जहाँ वे ७ वर्ष तक जीवित रहे और यहीं ८० वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त हुआ।

## सार और समीक्षा

उत्कृष्ट कल्पना की उड़ान, विषय-विवेचन की विशुद्धता और पदावली की मधुरता व शब्दों की लाक्षणिकता आदि इनके काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषताएं हैं। भाषा में अनुप्रासमयता का चमत्कार यद्यपि इनमें भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है पर वह सर्वत्र नहीं है। इन्हीं गुणों के कारण आपका स्थान रीति-काल के प्रमुख कवियों में है।

### कवित्त

कलित कपूर में न कीरति कुसोदिनी में,
कुन्द में न कास में, कपास में न कन्द में।
कहै 'पद्माकर' न हंस में, न हासहू में,
हिम में न, हेरी हारि हीरन के वृन्द में।
जेती छवि गंगा की तरंगन में ताितय,
तेती छवि छीर में न, छीरधि के छन्द में।
चैत में न चैत चांदनी हू में चमेलिन में,
चन्दन में न, है न चन्दचूड़ में, न चन्द में॥

मीनागढ़ बम्बई सुमन्द महाराज बंग
बन्दर को बन्द करि बन्दर बसावैगो।
कहे पद्माकर कसकि कासमीर हू को,
पिंजर सों घेरि कै कलिञ्जर छुड़ावैगो॥

बांका नृप दौलत अलीजा महराज कबौं,
साजि दल पकरि फिरंगिन दबावैगो ।
दिल्ली दहट्टि पटना हू को झपट्टि करि,
कबहूक लत्ता कलकत्ता को उड़ावैगो ।।

टप्पे की टकोर टक्करन की तड़ातड़ित,
माचै जब कूरम-करिंदों की लड़ालड़ी ।
कहै पद्माकर झपट्ट की झड़ाझड़ में,
सुण्डों की सड़ासड़ भुसुण्डों की भड़ाभड़ी ।।
मस्ती की मड़ामड़ जड़ाजड़ जंजीरन की,
पत्रों की पड़ापड़ गरज्जों की गड़ागड़ी ।
धक्कों की धड़ाधड़ अड़ग की अड़ाअड़ में,
ह्वै रहै कड़ाकड़ सुदन्तों की कड़ाकड़ी ।।

कूलन में, केलि में, कछारन में, कुंजन में,
क्यारिन में कलित-कलीन किलकंत है ।
कहै पद्माकर परागन में, पौन हूं में,
पानन में पीक में पलासन पगंत है ।।
द्वार में, दिशान में, दुनी में, देश-देशन में,
देखो दीप-दीपन में दीपत दिगन्त है ।
बीथिन में, ब्रज में, नवेलिन में, बेलिन में,
बनन में, बागन में बगरयो बसंत है ।।

देखु पद्माकर गुंबिद की अमित छबि
शंकर समेत विधि आनँद सो ब्राढ़ो है ।
झिझकत, झूमत मुदित, मुसुकात गहि
अंचल को छोर दोऊ हाथन सों, आढ़ो है ।।
पटकत पांव, होत पैजनी झुनुक रंच,
नेक-नेक नैनन में नीर-कन काढ़ो है ।

आगे नन्दरानी के तनिक पय पीये काज,
तीन लोक ठाकुर सो ठुनकत ठाढ़ो है ॥

कूरम पै कोल, कोल हू पै शेष कुंडली है,
कुंडली पै फवी फैल सुफन हजार की ।
कहै पद्माकर त्यौं फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है थिति रजत पहार की ॥
रजत पहार पर शंभु सुरनायक हैं,
शंभु पर ज्योति जटाजूह है अपार की ।
शंभु जटा जूटन पै चन्द की छुटी है छटा,
चन्द की छटान पै छटा है गंगधार की ॥

आस करि आयो हुतो मैया पास रावरे मैं,
गाढ़ हू के पास दुख दूरि बुटि-बुटि गे ।
कहै पद्माकर कुरोग से संघाती तेऊ,
गैल में चलत घूमि-घूमि घुटि-घुटि गे ॥
दगादार दोष दीन्ह दारिद बिलाइ गये,
फिकिर के फन्द बिन छोरे छुटि-छुटि गे ।
जौ लौं आउं-आउं तेरे तीर पर गंगा तौ लौं,
बीच ही में मेरे पाप-पुंज लुटि-लुटि गे ॥

जमपुर द्वारे लगे तिन में किवारे,
कोऊ हैं न रखवारे, ऐसे वन के उजारे हैं ।
कहै पद्माकर तिहारे प्रन धारे टेऊ,
करि अघ भारे सुरलोक को सिधारे हैं ॥
सुजन सुखारे करे पुन्य उजियारे अति,
पतित कतारे भवसिंधु ते उधारे हैं ।
काहू ने न तारे तिन्हें गंगा तुम तारे,
और जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं ॥

# जोधराज

## जीवन-परिचय

रचना-काल--सं० १८७५ के लगभग

'हम्मीर-रासो' के रचयिता जोधराज के जीवन-वृत्त से सम्बन्धित अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं। उनके द्वारा रचित एकमात्र ग्रन्थ हम्मीर-रासो में, आत्म-परिचय के रूप में इनकी कुछ पंक्तियां मिलती हैं।

ज्ञातव्य बातें उसमें इतनी ही हैं कि पृथ्वीराज के वंश में "राठ पातिसाह" उपाधिधारी चन्द्रभान नामक राजा किसी निम्बराग नामक स्थान का अधिपति था। जोधराज इसी राजा के आश्रित थे। कवि अत्रिगोत्रीय-गौड़-वंश-कुलोत्पन्न-ब्राह्मण था, जो काव्य-कला में निपुण होने के साथ-ही-साथ ज्योतिष-शास्त्र का भी ज्ञाता था। उसके पिता का नाम बालकृष्ण था। राजा चन्द्रभान की ही आज्ञा से कवि ने "हम्मीर-रासो" की रचना की। किन्तु उक्त विवरण में कवि की जन्म-मरण-तिथि पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

### सार ग्रौर समीक्षा

रणथंभोर-नरेश राव हम्मीर के हठ से कौन इतिहास-प्रेमी परिचित नहीं है ? राजपूताने के इतिहास-लेखकों को ऐसे महापुरुषों के चरित्र पर सदैव गर्व रहेगा। जोधराज का यह सौभाग्य था कि उनको एक ऐसा वीर राजपूत चरित्र-नायक के रूप में मिल गया। "हम्मीररासो" में कवि की सफलता का यही मूल कारण भी समझना चाहिए।

ग्रन्थ-रचना सरस तथा प्रभावोत्पादक स्थलों से पूर्ण है : विशेषकर हम्मीर की उक्तियाँ अधिक आकर्षक हैं। यथा :—

पच्छिम सूरज उग्गवै, उलटि गंग बह नीर ।
कहो दूत पतिसाह सों, हठ न तजै हम्मीर ।।

इसी प्रकार हम्मीर की रानी आशादेवी के एक-एक शब्द भारतीय आर्य महिला की वाणी के श्रृंगार होने योग्य हैं। हठी हम्मीर की स्त्री के मुख से ऐसे ही वचन कहलाना सर्वथा उचित है । दुर्ग जब चारों ओर से घिर गया तब हम्मीरराव ने अपनी पत्नी की परीक्षा लेने के लिए महिमाशाह को वापस देकर अपना हठ छोड़ देने का प्रस्ताव उसके सामने किया । इस पर रानी ने आश्चर्य-मिश्रित आवेश में जो कुछ कहा, उसका कुछ अंश इस प्रकार का है :—

"राखि सरन शेख न तजो, तजो शीश गढ़ वेगि।
हठ न तजो पतसाह सों, गहि कर तजो न तेगि ।।"

हम्मीर के सम्बन्ध में "तिरिया तेल हम्मीर हठ चढ़ै न दूजी बार" वाला दोहा बहुत प्रसिद्ध है । उसी प्रकार के कुछ सवाल तथा सुन्दर प्रभावोत्पादक पंक्तियां इस ग्रन्थ में भी हैं ।

दोहा छंद में भी इस प्रकार का सफल रसपरिपाक देखकर ही कवि के रचना-सौष्ठव का अनुमान लगाया जा सकता है । आचार्य-प्रवर पं. रामचन्द्र शुक्ल ने यथार्थ ही लिखा है कि "हम्मीर-रासो की कविता बड़ी ओजस्विनी है ।........प्राचीन वीरकाल के अन्तिम राजपूत का चरित जिस रूप में और जिस प्रकार की भाषा में अंकित होना चाहिए था उसी रूप और उसी प्रकार की भाषा में जोधराज अंकित करने में सफल हुए हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं ।"

ग्रन्थ के अध्ययन से मालूम होता है कि कवि वीररस के अतिरिक्त अन्य रसों में भी समान रूप से सफल हुआ है । ग्रन्थ के आरम्भ में पद्मऋषि की तपस्या भंग होने की कथा के बहाने कवि के षड्ऋतु-वर्णन तथा प्रसंगवश कुछ प्रकृति-चित्रण भी किया है जो वीरगाथा-काल के अन्य कवियों की अपेक्षा

सुन्दर ही हुआ है। शृंगार रस में जोधराज बिना अधिक प्रयास के ही सफल हो गये हैं।

कवि ने मित्र-पक्ष के मुख्य पात्रों का चरित्र-चित्रण भी बड़ा सुन्दर किया है। हम्मीर के पूर्वजों की महत्ता का वर्णन करने से उसकी दृढ़ता प्रमाणित होती है। राव के पूर्व पुरुष वीसलदेव ने सोनागढ़ के युद्धक्षेत्र पर अस्सी हजार मुसलमान सैनिकों का वध किया था। इसी प्रकार महारानी जी का चरित्र एक राजपूत क्षत्राणी के ही अनुकूल चित्रित किया है, जो पहले उद्धृत की हुई पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है। यही नहीं वीर महिमाशाह का चरित्र भी यथासाध्य उत्कृष्ट ही चित्रित किया है। छाँड़गढ़ दुर्ग के अधिपति काका रणधीर के सम्बन्ध में यह कहावत अब भी प्रसिद्ध है—

"जो कनवुज काकैं करी, करी छाँडि रणधीर"।

(ह. रा. ; पृ. १२१)

जोधराज ने रणधीर का जो चरित्र चित्रित किया है उससे यह कहावत पूर्ण रूप से चरितार्थ हो जाती है।

## रणधीर-यवन-सेना-युद्ध-वर्णन

**मैं पहलै पतिसाह सों, करी बात अब टेक।**
**सो अब चौरै साहि सो, करो जंग अब एक॥**

**चढ़िए करि कोप हमीर मनं, करि दिढ्ढ सगढ्ढ सम्हारि पनं।**
**बहु तोप सुसिद्ध सँवारि धरी, वुरजैं बुरजैं धर धूम परी।**
**बहु कंगुर कंगुर बीर अरे, सब द्वारन द्वारन धीर परे।**
**सब ठौरन ठौरन राखि भरं, चढ़िए गजपै चहुवान नरं।**
**बहु बीर हमीर सु संग चढ़े, गजराजन उप्पर द्वन्द बढ़े।**
**करि डम्बर अम्बर सीस लगे, मनु सोवत धीर सबीर जगे।**
**बहु चंचल बाजि करत्त खुरी, तिन उप्पर पष्षर सोंज परी।**

जर जान जवान लसैं दल मैं, रन मैं उनमत्त लसैं बल सैं।
बहु दुन्दुभि बज्जत घोर घनं, निकसे तब राव करन्न रनं।
बहु बारन बारन बीर कढ़े, गज बाजि सु सिंदन जान चढ़े,
लखि साह सनम्मुख कोप कियं, रणथंभ चहूं दिसि घेरि लियं।
मिलि राव हमीर सु साहि दलं, बिफरे बर बीर करंत हलं।
सर छुट्टत फुट्टत पार गजं, सु मनो अहि पच्छय मध्य रजं।
तरवार बहैं कर पानि बलं, धर मध्य धरैं धर हक्क खलं।
मुख अग्ग बढ़ै रणधीर लरैं, तिनसों पतिहास के बीर अरैं।
अजमंत मुहम्मद इक्क अली, तिन संग असीसु सहस्स चली।
तिहि द्वंद अमंद बिलंद कियो, रणधीर महा रण झेलि लियो।
करि कोप तबै रणधीर मनं, बर बैन कहै पन धारि घनं।
महिमंद अली मुख आय जुरचो, दुहुँ बीर तहां तब जुद्ध करचो।
अजमंत कमान लई कर मैं, रणधीर कै तीर कढ्यौ उर मैं।
रणधीर सुकोप कै सांगि लई, अजमंत कै फूटि के पार गई।
परियो अजमंत सु खेत जबै, महमंद अली फिरि आय तबै।
रणधीर सु कोपि के बैन कहै, कर देखि अबै मति भूल्लि रहै।
किरवान सु धीर के अंग दई, कटि टोप कछू सिर मांझ भई।
तब कोप कियो रणधीर मनं, किरवान दई महमंद तनं।
परियो महमंद अमंद बली, तब साहि कि सैन सबै जु हली।
लुथि लुथ्थि परै बहु बीर अरै, बहु खंजर पंजर पार करै।
घर सीस परै करि रीस मनं, कर पांव कटै बहु कीन पनं।
यहि भांति भिरे चहुवान बली, मुरि साहकी सेनि सु भग्गि चली।
बलखी जु परे जु हजार असी, लखि कालिय अट्ठ सु हास हँसी।
चहुवान परे इक जो सहसं, सुरलोक सबै बर बीर बसं।

असी सहस बलखी परे, महमद अजमत खान।
तहां राव रणधीर के परे सहस इक ज्वान॥

भजी फौज सब साह की, परे मीर दोइ बीर ।
करे याद पतिसाह तब, गज्जनि गढ़ के पीर ॥

भज्जिय फौज साह की ज़बहीं, फिरो फिरो बानी कह सबहीं ।
तहाँ साह करि कोप सु वुल्लिव, समर भुम्मि अब छंडि सुचल्लिव ।
सरबसु खाय भोग करि नाना, अबै परम प्रिय लागत प्राना ।
समर विमुख तैं जानब जोई, हनूं आप कर तजों न सोई ।
सुने साह के कोपि सु बैनं, फिरी सैन इम मंत्र सु एनं ।
बखतर पक्खर टोप सु सज्जिय, जुरे जंग बहु मीर सु गज्जिय ।

बांदित खां पतिस्याह सों, करी सलाम सु आय ।
हजरत देखहु हाथ मम, कैसी करूं बनाय ॥

करि कोप बादित खां जुरे जंग, मनो प्रलै पावक उठे अंग ।
गुंजत निसान फहरात धुज्ज, जुति जिरह टोप तन नैन सज्ज ।
किए हुक्म साह तन मैं रिसाइ, किन्हों सु जंग फिर बीर आइ ।
छूटत तोप मनु बज्रपात, जल सुक्कि धरा छुटि गर्भजात ।
बहु बान चलत दोउ ओर घोर, अररात अमित मच्यो सु सोर ।
भए अंध धुंधसु सुरझै न हथ्थ, बीर चहुवान तहँ करि अकथ्थ ।
रणधीर उतै बाघत्ति खान, बजरंग अंग जुट्टे सु पान ।
हजार बीस बादित्य साथ, सब जुरे आय रणधीर हाथ ।
बज्जंत सार गज्जंत अब्भ, रणधीर सथ्थ आए स सब्भ ।
करि क्रोध जोध बाहंत सार, टूटंत अंग फूटंत पार ।
करि खेल सेल दोउ ओर बीर, बाहंत बीर किरवान धीर ।
हज्जार बीस बढ्ढंत साह, धर परे बीर करि अकथ गाह ।
रणधीर मीर दोउ भिरे आइ, बाधत्त गाहि तब रोस बाइ ।
लग्गी सुढाल भू टूटि ताम, फिर दई सीस किरवान जाम ।
लग्गी सु सीस धर परयो जाय । दुई टुक्क होय भमि अद्ध काय ।

भयो सोच जिय साह कै, जीतिय जंग हमीर।
बादित खां से रन परे, बीस हजार सुबीर।
महरम खां कर जोरि कै, करै अर्ज तिहि बार।
लै कर शेख हमीर अब, किमि मिल्यो यहि बार।
गही तोप तुम सों अबै, हठ नहिं तजै हमीर।
सेख देय मिल्लै नहीं, पन सच्ची बर बीर।

कर कुरान गहि साह सीस साहिब को नायो।
गढ़ दिस दल चहुँ ओर घोरि रज अम्बर छायो।
देखि अलावदि साह कहै दल बद्दल भारी।
अब हमीर की अदिल आय पहुंचीह सुसारी।
महरम्म खान इम उच्चरै अदिल हाथ साहिब तनै।
का होनहार ह्वैहै अबै को जानै कैसी बनै॥

हजरति अपन इष्ट पर, पावक जरत पतंग।
यह हमीर कबहुं न तजै, सेख टेख रणथंभ।
साह दसों दिसि जित्ति कै, अब आए रणथंभ।
कहै राव रणधीर सों, जुरो सूर रण रंग।
अप्पन धर्म्म न छंडिए, कहै बात रणधीर।
निसि बासर अब साह सों, किज्जिय जंग हमीर।

को कायर को सूर द्यौस बिन दृष्टि न आवै।
बिन सूरज की साखि सार छत्री न समावै।
बीर गिद्ध अरु संभु सकल फलहारी जेते।
धर पर धरैं न पांव रैन मैं दिनचर जेते।
इम कहै राव रणधीर सों मैं अधर्म्म नाहिन कहूं।
अब अलावदी साह सों रैन सार कबहुं न गहूं।

लरैं नो सयद्दं रणथ्थंभ देवा, करै क्रोध भारी पिलै हर्ष भेवा।
गरज्जंत घोरंत आतंक भारी, घनै घोर वर्षन्त वर्षा करारी॥

कभू हल्लवै भुम्मि गज्जंत वीरं, कभू घोर अंधार वर्षन्त पीरं।
गगन्नाथ हथ्थं लिए तिक्षि फर्सी, पिनाकी पिनाकं किए आप दर्सी।
धरै मुद्गरं हथ्थ भैरव अमानो, इसे देव जुट्टे सु कट्टे अमानो।
इतैं पीर हजरत्त के सथ्थ पिल्ले, अबद्दल्ल एकं हुसैनं सुमिल्ले।
रहीमं सयद्दं सुलत्तान जक्की, अहमद्द कानीर सूलं सु मक्की।
इतै बीर जुट्टे सु कट्टे पुरानं, भयो जुद्ध भारी सु भूले कुरानं।
परे खेत नौ सैद दट्टे धरन्नी, हँसे शंकरं भैरवं की करन्नी।

परे पीर यूं नौ रसूलं सु अल्लो, परचो पीर दूजो बुतब्बं सु चल्लो।
परचौ जो हुसैनं करचौ जुज्झ भारी, परे हेरि हिम्मित्ति अल्लो सुधारी।

सयद्दं सुलत्तान आयो जु मक्का, अदल्ली परे और तुक्का सु बंका।
परचौ दूरसी जो रसूलं सु खेतं, तबै बादस्याह भयो सो अचेतं।
परै मीर नौ सैद जानंत साहं, लरै अट्ठ बीरं हटै बैन काहं।
अजं त्त भारी हमीरं सु जानी, तबै कुच्च कीन्नो दरै छाड़ि कानी।
उलट्टे परे जोय किन्नो दिवानं, जुरे खान जेते सु तेते अमानं।
वजीरं अमीरं सबै खान बुल्ले, सबै बात मंत्रं सु मंत्री सु खुल्लै।

मरहम खां उज्जीर तब, अरज करी सब खोलि।
लख बलखी उमराव तो, सदकैं भए हरोलि॥
अरु बकसी के बचन सुनि, साह कियो अति सोच।
निबही राव हमीर की, गिनो हमैं सब पोच॥
महिमा साह हमीर गढ़, ये तीनो साबूत।
बाजी रही हमीर की, मैं कायर जु कपूत॥

मरहम खां कर जोरि साह कों ऐसैं भाख्यौ।
इक हिकमत तुम करो नीक जानो तो राख्यौ।
महल छाड़ि करि फते बहुरि गढ़ सों जुध किज्जिय।
तोरि छाड़ि रणधीर मारि कैं पकरि सु लिज्जिय।

आतंक संक गढ़ मैं परै मिलै राव हठ छंडि कै ।
गहि सेख देय मिलि सुत्तवै करौं कुच्च जब उलटि कै ।

कहै साह महरम खां सुनियौ, यह मत खूब किया तुम गुनियौ ।
छांडि दरा को प्रथम दिली जे, चन्द रोज महँ फतह जु कीजै ।

मरहम खां पतसाह कों, हुकुम पाय तिहि बार ।
सकल सेन तजवीज करि, घेरी छाड़ि हकारि ।।

कोप पतिसाह गढ़ छाड़ि लग्ग, सहस सब तीन नीसान बग्गै ।
सहस दस सात आरब्ब छुट्टै, गरज गिरि मेरु पाषाण फुट्टै ।
उठत गुब्बार महि ताप लग्गै, गए बन छंडि मृग सिंह भग्गै ।
लक्स पच्चीस दल और फेरचौ, यह भांति पतिसाह गढ़ छांड़ि घेरचो ।
कहै पतिसाह नहिं बिलम किज्जे, चन्द दिन बीचि गढ़ छांड़ि लिज्जै ।
कहे रणधीर मन धीर धरिए, आय चहुंवान सफजंग करिये ।
निस्सान सों सद्द सुन्दर सुबज्जै, राव रणधीर आयुद्ध सज्जै ।
बीर रस राग सिंधूर वज्जै, सहस इकतीस दल संग लिज्जै ।
सहस दस सूर कुल तेग खेलैं, अप्प जिय रष्षिपरमाल पिल्लैं ।
यही भांति रणधीर चौगान आए, उड़ि जमीं गर्द आसमान छाए ।
अवदल्ल करिम्म पतिसाह पेले, मीर रणधीर चौगान खिल्लै ।
बहै वान किरवान औ चक्क चल्लैं, रणधीर कह सूर तुम होहु भल्लै ।
साह सों सूर संमुक्ख जुरिए, हबस के मीर दस सहस परिए ।
टुट्टि सिर मीर धड़ पहुभि लष्षै, पंच सत सूर उड़ि गिद्ध भष्षै ।
राव रणधीर अप्पन सिधारे, अबदुल्ल करम खां पहुमि पारे ।
साहि रणधीर सफजंग जुरिए, साह दल उलटि दो कोस परिए ।
कहै रनधीर नहिं विलंभ किज्जै, बीति चन्द रोज गढ़ छाड़ि लिज्जै ।
गढ़ कोट हू भांति नहिं हथ्थ आवै, यं ही पतिसाह दल क्यों खिसावै ।

वर्ष पंच गढ़ छाड़ि को, नहि संवत पतिसाह ।
द्वादस वरष रणथंभ सों, निधरक लरि अब साह ।।

धनि सुराव रणधीर साह मुख आप सराहैं ।
मुझ दिसि सम्मुख आय कोप करि सार समाहैं ।
साह बचन इम कहैं मीर महरम खां सुनिजैं ।
जीति जंग रणवीर धन्य वह राव सुभनिजैं ।।
पतसाह राडि सफजंग की मनैं करिय आपन सबैं ।
चहुं ओर जोर उमराव सब किए मोरचा दृढ़ अबैं ।।
जबैं राव रणधीर कहै हम्मीर सुनिज्जैं ।
सबैं हिन्द को साथ बोलि रणथंभ सुलिज्जैं ।
लिखि फर्मानह राव बंश छत्तीस बुलाए ।
जुरे जंग चौगान उमंग दल बद्दल छाए ।
कर जोरि सबैं हाजिर भए राव बचन बिधि या कहैं ।
मैं गहि तेग पतिसाह सो घरि जाहु जौन जीवो चहैं ।
कह काको रणधीर राव सुन बचन हमारे ।
अबै छाँड़ि कित जाहिं खाय करि निमक तिहारे ।
अलीदीन सो जुद्ध छंडि गढ़ चौरे मंडौं ।
जिती साहि की सेन मारि खग खंड विहंडौं ।
चाटूं सुनीर या वंश को अकथ गाथ ऐसी करूं ।
रबि लोक भेदि भेटूं सुभट अप्प सीस हर हिय धरूं ।
कहैं राव हम्मीर सों, मन्त्र एक रणधीर ।
जमीति गढ़ चित्तौड़ की, अजहुँ न आइय बीर ।।
लिखि फर्मान हमीर तब, पठए गढ़ चित्तौर ।
बंचि खान बल्हन कुँवर हर्ष कीन नहिं थोर ।।
हर्षे उभय कुँवर चहुआनं, चतुरंग के तुरंग सजि आनं ।
सोला सहस चमू सजि सारी, सजे खान बल्हन सी भारी ।
सहस तीन कमधज्ज सु जानों, सहस अट्ठ चहुवान बखानों ।
सहस पंच पम्मार अमानै, सोला सहस सजैं करिवानै ।

मिले तब आय कुमार सु दोय, हमीर सुचाव कियो बहु जोय।
बढ्यौ हिय हर्ष दुहूँ उर सोय, कहै तब बैन सु राव सु होय।
करैं हम जंग लखो अब हथ्थ, उठे दुहुँ बीर कही यह गथ्थ।
चढ़े चतुरंग कियो तन कोप, मनो अरुनोदय भान सु ओप।
बजे रणतूर सु भेरि सबद्द, भए पद गोमुख बीर सु सद्द।
चढ़े कुँवरेस तबै चतुरंग, बढ्यौ हिय हर्ष करैं रणरंग।
कहै तब खान सु बाल्हन सीह, करे सफजंग अवैदल वीह।
रतन्न कुमार रखो गढ़ ओर, नरब्बल ग्वालिर ओर चितोर।
नठै तब अन्न करो सफजंग, तजो मति टेक लरो अतभंग।
असी सुनि बैन हमीर सुभाय, भरे जल नयन रहे मुरझाय।
कहीं तब कौर नहीं थिर कोय, चलै गिर मेरु नहीं थिर सोय।
मिले सुरलोक ससोक सकौन, सुनी यह राव रहे गहि मौन।
गए रनबास जहां दोउ बीर, कियो परनाम जुहार सुधीर।
सबै रनबास भरे जल नैन, कही तदि आसमती यह बैन।
करो तुम उच्छइ हैं यह बार, कहे तदि बैन हँसे जु कुमार।
धरो तुम सीस हमारे जु मोर, लरैं सिर सेहर बांधि सजोर।
बँध्यौ तब मौर कुमारन सीस, दई बहु भांतिन आसु असीस।
कियो बहु हर्ष कुमार अपार, गए हर मन्दिर सो तिंहि बार।
गनेसुर शंकर पूजि सुभाय, करै बहु ध्यान गहे जब पाय।
चढ़े बरबीर बढ्यो हिय चाव, बजे बहु बाजि निसानन घाव।
गजे असमान धरा बहु भाय, गजे घनघोर घटा मनु छाय।
तुरंग अनेक सुफेरत सूर, बनी तिन उप्पर पष्षर पूर।
झलक्कत नूर चमक्कत सेल, चढ़े मुख ओप बढ़े मुख मेल।
उड़ै रज अम्बर सुज्झ न भान, हँसे हर देखत छुट्टिय ध्यान।
चली संग अच्छरि जुग्गनि ताम, मिली बहु पंखनि गिद्धनि जाम।
मिले बहु भूचर खेचर हूर, चले पल चारिय भूत सुभूर।
करे सु जुहार हमीरहिं ध्याय, करी यह बात परस्सि सुपाय।

मिले भव आनि सुनो चहुँवान, करैं कल रीत तजैं नहिं बान ।
तजौ धनधाम रु लोभ सु मोह, धरौ मनु टेक सरन्न सुजोय ।
इती कहि सीस नवाय हमीर, कियो रणथंर्भाहि बन्दन धीर ।
चले सनम्मुख उनैं कुमरेस, सजे चतुरंग तनय करि रेस ।
जहां पतिसाह, अलावदि और, चली बर बीरति बांधि सुमौर ।

करि असवारी कुमर दोउ, उतरे पौलि सु छांन ।
डेरा करे उछाह जुत, बजि निबति नीसान ॥
सुनि नोबति के नाद तब, बहु उछाह गढ़ जान ।
न अलाबदी हसम दिसि, चाहत भयो निदान ॥
बोलि खान सुलतान तब, मसलति करी जु साहि ।
गढ़ में कहा उछाह अति, कहा सबब यह आहि ॥
है यह राव हम्मीर के, लघु भय्या के पूत ।
लरन काज इन सेहरो सिर बांध्यो मजबूत ॥
भइय संक पतिसाह उर, कीनो बहुत विचार ।
जौ न सिंह के मुख चढ़ैं, सो झिल्लै इन सार ॥

कहै वजीर साह सुनि बत्तं, मीर अरम्बिय जांनि सु तत्तं ।
मर्कट-बदन सुकर सम कानं, द्रग मंजार बेस खल जानं ।
तुम सों मत प्रथ्विराज सु अग्गें, गढ़ गज्जनि आए गहि खग्गैं ।
तुमहिं दिली के तख्त बसाए, गोरीसा के भए सहाए ।
वे दोउ कुमर पकरि अब लावैं, सन्मुख होइ तो मार गिरावैं ।
सुनि वजीर के बचन सुहाए, मीर जमालखान बुलवाए ।
कहे साह सुनि मीर जमालं, है यह काम तुम्हारैं हालं ।
आगैं तुम गहियो प्रथ्विराजं, क्यों तुम गह कुँवर दोउ आजं ।

सुनि जमाल खां मीर हथ्थ धरि मुच्छ सँवारिय ।
पांव परसि कर जोरि कवन, बड़ काज निहारिय ।

जो आयुस अनुसरो सकल हिन्दू गहि लाऊं।
सम्मुख गहैं जु सार मारि तिहिं धूरि मिलाऊं।
इम कहि सलाम कीनी तुरत सज्जि सथ्थ सब अप्पबल।
सजि कवच टोप कर खग्ग गहि उभै ओर किन्निय सुहल।

इतै कुमर चित्रांग के जंग जुट्टे, उतैं मीर आरव्व के बीर छुट्टे।
दुहुं ओर घोर निसानं सु गज्जं, मनो पावसं मेघ घोरं सु गज्जं।
दुहूं ओर खंडं प्रचंडं सुभारी, छुटे नाल गोला बँदूकं सुभारी।
भयो सोर घोरं धुंवा घोर घोरं, गई सुद्धि सुज्झै नहीं नैन ओरं।
करैं सेल खेलं महाबीर बके, फुटै अंग अंगं करै दोय हके।
वहैं तेग अंगं करैं टुक्क दोई, हँसी कालिका देखि कौतुक्क सोई।
वहै जम्म दंडं करैं बाहु जोरं, कढ़ै अंत अंतं कहूं सीस तोरं।
कहूं हथ्थ मथ्थं परे बीर बंके, उठै रुंड मुंडं करैं जोर इंके।
उतैं मीर जाम्मील ध्यायो हंकारं, इतैं खान धायो भिरियौ इक्क बारं।
उतैं मीर तीरं चलायो हंकारी, लग्यो बाजि कै सौ भयो बारि पारि।
परयो खांन को बाजि फुट्टौ सु अंगं, चढ़े और बाजी करचौ फेरि जंगं।
दई खांन जम्मील कै अंग बच्छीं, परचौ भुम्मि कीरं सुतो आय मुच्छीं।
दोऊ सैन देखैं भिरे बीर दोई, भए लत्थ वत्थ कुमारं सु सोई।
परचौ जोर भारी कुमारं सु जान्यौ, तबै राव हम्मीर उप्पर सुठान्यौ।
लियो बोलि संखोदरं सूर सोऊ, करो ऊपरं जाय कुम्मार दोऊ।
महाबीर अज्जान बालग्घु सूरं, महायुद्ध जानं इतो बै करूरं।
चले सूर संखोदरं खेत आए, उतै आरबीसेन द्वै लक्ख धाए।
उड़ै बान गोला गजं बाजि फुट्टैं, बहै बान कम्मान ज्यों मेघ उट्ठैं।
धरैं आयुधं बीर सों बीर बुल्लैं, परैं सीस भू मैं किती सीस झल्लैं।
कहैं खांन कुम्मार बैनं हंकारी, सुनो सर्व सथ्थं करो युद्ध भारी।
रहै नाम लोकं महा मुक्ति मिल्लै, रहैं नांहि कोई सदा आय भिल्लै।
चलाए गजं खोपि कुम्मार सोई, उतं आरबी मीर जम्माल होई।

तबै बीर बालन्नसी कोप किन्नों, महा तेग जम्माल कैं मथ्थ दिन्नों।
कटचौ टोप ओपं लगी जाय मथ्थं, तबै मीर बालन्न सथ लुथ्थ वथ्थं।
कटारं कुमारं चलायो पु भारी, परचौ मीर जम्माल भू मैं सु थारी।
सबै सथ्थ जम्माल की कोपि धायो, तहां बालन्न मारि धरनी गिरायो।
तबै खांन कुम्मार धायो रिसाई, धनी सेन आरब्ब धरनी मिलाई।
तबै बीर संखोदरं जंग कीनो, किते आरबी खेत पारचौ नवीनो।
किते सेल खेलं करैं वार पारं, भभक्कैं घटैं घाव छुट्टैं पनारं।
बहैं तेग वेगं परे सीस भारी, उड़ें घोर रुंडं परैं मुंड कारी।
परे दोय कुम्मार किन्नी अकथ्यं, बरी अच्छरी सूर लोकं सु मथ्थं।
परे मीर आरब्ब के पोन लक्खं, तहां हिन्द की भोर सौरा कुभक्खं।
परे दो कुमारं महाबीर बंके, परे एक संखोदरं कौन हंके।
तहां आठ हज्जार चहुवान जानं, परे तीन हज्जार कमधज्ज मानं।
पँमारं परे पांच हज्जार सोई, परे वीर सोला सहस्रं सुजोई।
पँमारं परे पांच हज्जार सोई, परे वीर सोला सहस्रं सुजोई।
परे स्वामि के कज्ज कुम्मार दोई, सुनो राव हम्मीर जीते सु सोई।
भजे आरबी ज्यों बचे जंग तेयं, कहै साह देखो सु हिन्दू अजेयं।

# शब्दार्थ

## १. चन्दवरदाई

### पृष्ठ-संख्या ३

बोहिथ—जहाज़

दूसन—दोष

सिवालह—शेवाल, काई

ब्रन्नन—वर्णन

वक्तिणि—वक्ता, कहनेवाला

हुन्नन—आनन्द देनेवाली

जुत अजुत—युक्तायुक्त

सुरिष्षि वासिष्ठ—वसिष्ठ ऋषि

जजि—यज्ञ करके

सामह—सम्मुख

षुट्टिसुतन—नष्ट कर डाले

### पृ० सं० ४

इष्षि—देखकर

ब्रह्मकृत्य—यज्ञ

रत्त ब्रन्न—रक्त वर्ण

करह—हाथ से

निघट्टिय—मारकर गिरा दिये

षित्ति—क्षिति, पृथ्वी

संमुहे—सामने आये

बंभानिजग्य—ब्राह्मण का यज्ञ

षग्ग—खड्ग

रिष्ट—अरिष्ट, विघ्न

सुदुज—ब्राह्मण-श्रेष्ठ (वसिष्ठ)

पुव्वह—पूर्वज

दहन—अग्नि

पित्थलनरेस—महाराज पृथ्वीराज

सुसोम—सोमेश्वर

धोम—धूमधाम

भोम—भूमि

धम्म मंड्यो उच्छव—धार्मिक विवाहोत्सव रचा

ग्रहन पानीग—पाणिग्रहण

सै सत्त—सात सौ

हिंसार कोट—हिसार तक

वाजि—घोड़े

### पृ० सं० ५

धरणि—रानी

जंप्यौं—कहा

आषेटक षिल्लिय—शिकार खेलने गये

म्रगया—शिकार

ढिग—पास में

पृ० सं० ६

**गज्जनै**—ग़ज़नी

**गजनर**—हाथी-घोड़

**स्वानं**—कुत्ते

**धानुक्की**—धनुषधारी

**बाजित्र**—बाजे

पृ० सं० ७

**श्वरि**—खबर

**सेत पष्षह**—शुक्लपक्ष

**अंमर**—देवता

**रव**—शब्द

**सन्नाहा**—कवच

पृ० सं० ८

**कमनेत**—धनुषधारी

**लष**—लाख

**साइर**—समुद्र

**गत्त**—शरीर

**अंधकि**—अंधकासुर

पृ० सं० ९

**धायौ**—दौड़ा

**पग**—पाँव

**कूह कूहं**—कोलाहल

**सार सारं**—शस्त्रास्त्र

**रत्त**—रुधिर

**सनक्कै सनक्कैं**—सनसनाते हुए

**बहै**—चलती थी

**उघट्टं**—नंगी

**सूर**—सूर्य

---

## २. विद्यापति

पृ० सं० १२

**बइसल**—सखियों को

**बोलि पठाव**—बुलाते हैं

**सामरी**—श्यामा

**अनुखने**—प्रतिक्षण

**उदवेगल**—उद्विग्न बनानेवाला

**धाओल**—दौड़े

**पौगंड**—बाल्य और यौवन के बीच की अवस्था

**धएल**—धारण किये

**पीठल**—पीठ-सिंहासन

**सिखिकुल**—मोर

**कएल**—कर दिये

पृ० सं० १३

**पुलिन**—तट

**निविल नीरद**—घने बादल

**बिहि**—विधि

**जोल**—जोड़ी

**चानन**—चन्दन

**एकसर**—निरन्तर

झामरु—झुलस कर मलिन
आओत—आय
चान—चन्द्रमा

पृ० सं० १४

भाविनी—भामिनी
अनुगति—सेवक
फुल कोका—खिला हुआ लाल कमल
फेन—झाग
काता—खड्ग
जनु—मत (निषेधार्थक)
जखन—जिस समय
तखन—उस समय
धरहेरिया—पकड़ने वाला
सद्दहि—बज रहे हैं
कोह—क्रोध

पृ० सं० १५

तरनि तेउ—सूर्य का तेज
झम्पिय—ढक गया
पदाति—पैदल
विज्जुदाम—बिजली
तुरअ—तुरग, घोड़ा
सार असार धारा—बाणों की झड़ी
परिपंथि—शत्रु
नरवइ कुल—नरपति, राजा

---

## ३. कबीर

पृ० सं० १९

वाल्हा—परम प्रियतम
दुलहिनी—इंद्रियां या अन्य आत्माएं।
पंच जनां—पांच तत्त्व
तीनि जनां—तीन गुण
सगौ भाई—मन
सर—चिता
तूर बजाई—बिगुल बजाकर, डंके की चोट कर
चरखा—शरीर रूपी चरखा
कातों सूत हजार—अनेक कार्य करूं।

पृ० सं० २०

बाबा मोर—गुरु
बिटिया—आत्मा
बाप—गुरु और परमात्मा
चरखा—शरीर
बीनै—बुने
माई—माया
पुतिहाई—पुत्र (आत्मा) का नाश करने वाली
तुरिया—तुरीयावस्था
चूहै—विकार
ताना—शरीर

**नणद के बीर**—प्रियतम
**गंग तीर**—इड़ा नाड़ी
**जमुन तीर**—पिंगला नाड़ी
**पंचू मोर**—इन्द्रियां

पृ० सं० २१

**सुन्नि मंडल**—ब्रह्मरंध्र
**दरियाव**—समुद्र

पृ० सं० २२

**पांच पचीस तीन**—काम-क्रोध आदि पांच विकार, पच्चीस तत्व और तीन गुण
**अनेड़ा**—दूर
**अनहद ढोल**—समाधि की अवस्था म ब्रह्मरंध्र में सुनाई देनेवाला अंतर्नाद

पृ० सं० २३

**नैहर**—संसार रूपी माया का
**चुनरी**—शरीर रूपी चुनरी
**ससुरिया**—प्रियतम का नगर-मोक्ष-धाम
**गौवां के लोग**—मुक्त आतमाएं
**झीनी झीनी बीनी चदरिया**—शरीर रूपी चादर

पृ० सं० २४

**हरुए-हरुए**—हल्के-हल्के
**ओबरी**—कोठड़ी
**खिसहि**—नष्ट हो जाते हैं

पृ० सं० २५

**सबूरी**—सन्तोष
**सूची**—शुचि, पवित्र
**रसातल**—पाताल

---

४. जायसी

पृ० सं० २८

**बिलमावा**—बहकाना

पृ० सं० २९

**परिमल**—सुगन्धि
**मयारू**—दयालु
**पौरी**—द्वार
**मरजीया**—गोताखोर

पृ० सं० ३०

**दसवँ द्वार**—ब्रह्मरन्ध्र
**हौं हौं**—सोऽहम्
**आहिं**—हैं
**सिद्धि गनेस मनावा**—प्रस्थान किया
**छेंका**—घेर लिया
**खेला**—आये
**बसीठ**—दूत
**गौने केहु**—आये
**उपनी**—उत्पन्न

पृ० सं० ३१

**माखे**—क्रुद्ध हो गये

[illegible] की [illegible] है

[illegible] की [illegible] है

[illegible] की [illegible]

[illegible] से कितनी [illegible]

है।

S SSI

SSI

SIS ISI S ISI SI S IS

२ ३ ८ ८। ६